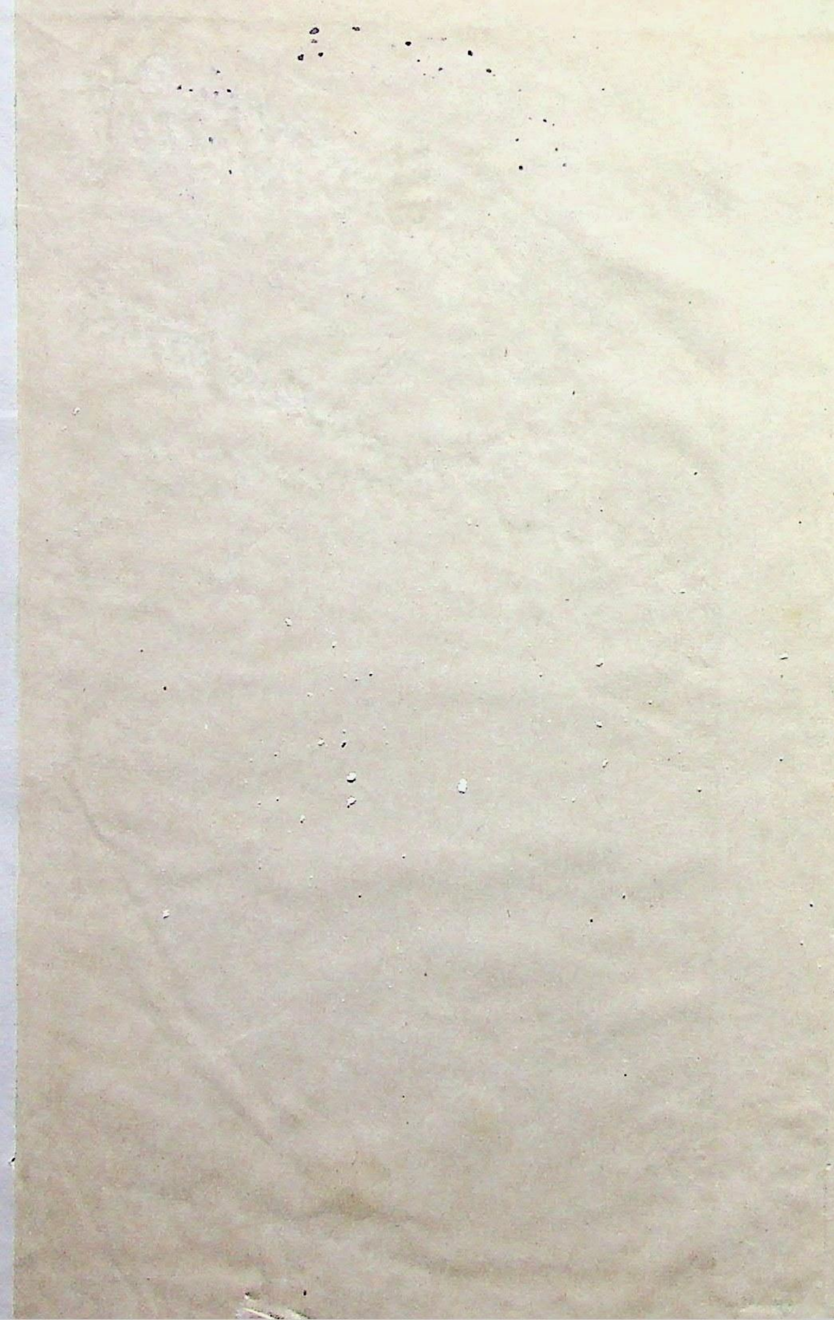
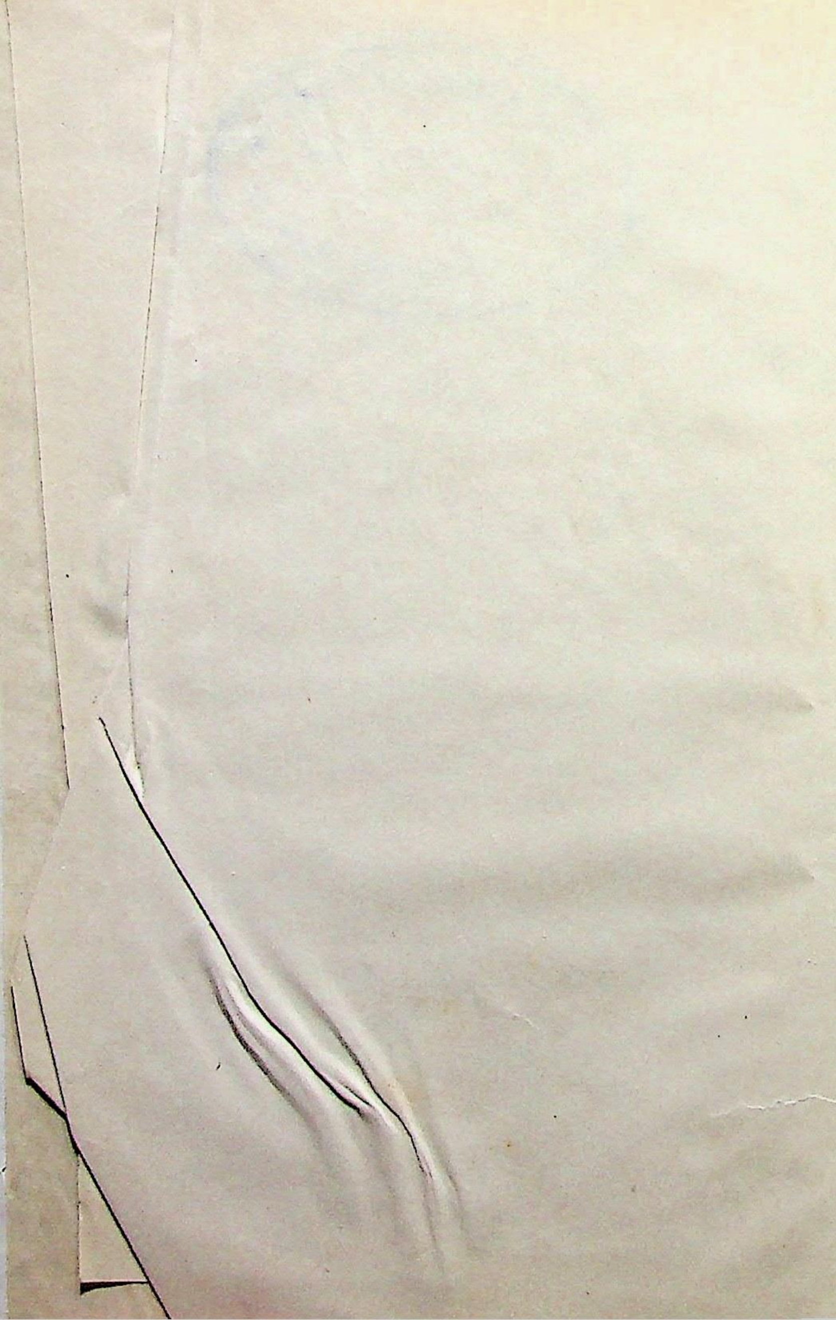
ोविंद वल्लभ पंत






HEADQUARTERS
Artillery Brigade



352

रज़िया

"मेरे एक लड़की हुई है, मैं आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ।" इल्तुतमिश ने कहा।

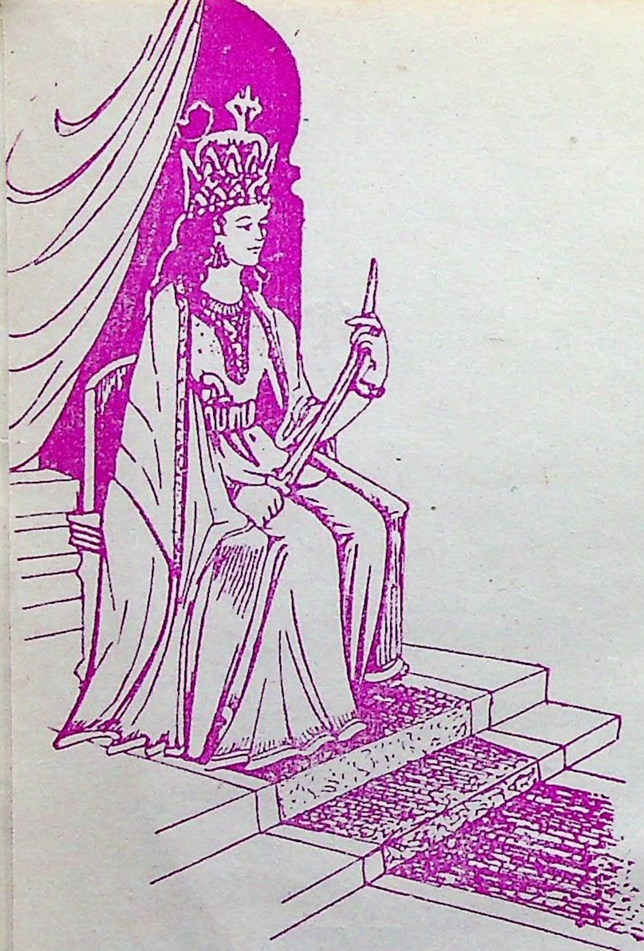
"ठीक है, एक नालायक़ लड़के के बाद लड़की लायक़ हो सकती है।... कब हुई?" संत कुतुबुद्दीन ने पूछा।

"ईद के दिन।"

"क्या नाम रक्खा?"

"आप जो कहें।"

"उसका नाम रज़िया रख दो।"



—: वितरक :—

पर्वतीय पुस्तक सदन

९, विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ

गोविन्दवल्लभ पंत

रज़िया

(ऐतिहासिक उपन्यास)



प्रकाशक : तुलसी प्रकाशन, ९, विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ
मुद्रक : आदर्श मुद्रणालय, ऐशबाग, लखनऊ
प्रकाशन वर्ष : प्रथमबार, १९७४
मूल्य : १२-००

RAZIA (Novel) by GOVINDVALLABH PANT

९

सिंहासनारूढ़ होने के बाद कुछ ही वर्षों में इल्तुतमिश ने बंगाल से पंजाब तक अपनी सत्ता को सुदृढ़ कर लिया : ऐबक के जीते हुए प्रांतों को उसने अपने पराक्रम से अधिक विस्तृत कर दिया। सन् १२२८ ई० में बगदाद के खलीफा ने इल्तुतमिश के शासनाधिकार को अपनी स्वीकृति दे दी, और वह अपनी जाति और धर्म के लिए परम मान्य हो गया। ऐबक ने जिस संत के नाम पर जिस मीनार का आरंभ किया था, उसने उसे पूरा किया। इसके अतिरिक्त शमशी तालाब और जहाजमहल का भीनिर्माण कराया, जो अपने ध्वंसावशेष में अब भी मौजूद हैं।

इल्तुतमिश सहधर्मियों के लिए बड़ा न्यायी, उदार और प्रजापालक था। उसने अपने महल के द्वार के बुर्जों पर संगमरमर के दो सिंह स्थापित कर रक्खे थे। उनके गलों में जंजीरों से बँधी बड़ी घंटियाँ लटका रक्खी थीं महल में। हर एक को उन्हें बजाकर अपनी फ़रियाद सुनाने का अधिकार था। उसकी यह आज्ञा भी प्रचारित थी कि जिस पर अत्याचार किया गया हो, वह लाल वस्त्र पहनकर सुलतान की दृष्टि को आकर्षित कर ले। घंटी से रात में और लाल कपड़ों से दिन में यह सूचना दी जाती थी।

वह बड़ा धर्मप्राण व्यक्ति था। पाँच समय की नमाज़ों में, चाहे कितना ही आवश्यक काम क्यों न हो, एक नमाज़ को भी नहीं टालता था। रात-रात-भर जागकर प्रभु की उपासना में लवलीन रहता। जब उत्तरी भारत का पूर्व से पश्चिम तक का भाग उसकी तलवार के नीचे विनत हो गया, तो राजधानी दिल्ली का भाग्य चमक उठा। राजधर्म इस्लाम के होने के कारण उस संस्कृति का बहुत प्रसार हो गया।

आबादी का बड़ा फैलाव हो जाने से जामा मसजिद धर्मप्राणों की उपासना के लिए छोटी पड़ गई। उसने उसके प्रांगण का विस्तार करवाया। कुतुबउद्दीन ऐबक उसका स्वामी था और संत कुतुबउद्दीन उसका गुरु। अपने राज्य, अधिकार, ऐश्वर्य तथा वैभव के लिए वह उन दोनों का ऋणी था। कुतुबमीनार की एक मंज़िल पर उसनें और तीन मंज़िलें खड़ी कर उन दोनों के प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता का प्रदर्शन किया।

राज्य के विग्रहों और विवादों में जब उसकी शांति भंग हो जाती, तो वह उस सूफ़ी संत के चरणों में जा पड़ता और अपनी समस्याओं के हल और संघर्षों के लिए नई स्फूर्ति लेकर ही लौटता। हाँ, उसके अंत:पुर में भी कुछ कम विद्रोही तत्त्व समाए हुए नहीं थे। जब वह सूबों को सँभालने जाता, तो उसके अंत:पुर में गड़बड़ी फैल जाती और जब अंत:पुर में अनुशासन स्थिर करता, तो प्रांतीय सूबेदार उसके शासन के सूत्र तोड़ डालने के लिए कमर कस लेते।

उसके अंत:पुर के कलह का ख़ास कारण थी उसकी रानी शाह तुर्कान। वह पत्थर की मूर्तियों का शत्रु उस हाड़-मांस की पुतली पर अपने प्राण निछावर कर बैठा।

शाह तुर्कान बाहर से जितनी सुन्दर और कांतिमयी थी, भीतर से उतनी ही कुटिल और काली। वह अच्छे कुल की नहीं थी। सुलतान जब उसके रूप की माया में घिर गया, तो उस कपटी रानी की आकांक्षाएँ असीम हो उठीं। वह राज-काज में अपना हाथ बढ़ाने लगी। उसके लिए उसने तमाम अमीर-उमरावों, आलिम-मुल्लाओं, राज्यपाल-सरदारों की सुकामनाएँ अपनी ओर करनी आरंभ कीं।

सुलतान उसके रूप के महासागर में आकंठ डूबा हुआ था। अपने पूरे प्रभाव में रख लिया उसने उसे। राजकर्मचारियों पर वह अपने एहसान जमा करने लगी। किसी को नौकरी दिलाकर, किसी को पदोन्नति कराकर, किसी को ख़िलअत, किसी को जागीर, किसी को धन-संपत्ति दे-दिलाकर उसने अपना पक्ष सबल कर लिया।

किसी को राजा के दंड से बचाकर, किसी को क़ानून के फंदे से छुड़ाकर और किसी को अपने चपल कटाक्षों के जादू से अभिमंत्रित कर भी तो। बाहर प्रजा ही नहीं, राज-सभा ही नहीं, अंतःपुर की दासियों और कर्मचारियों को भी खरीदकर उसने अपने वश में कर लिया।

उसका पिता ग़ज़नी और लाहौर के बीच में ऊँटों के द्वारा व्यापार करता था। शाह तुर्कान उसी से रखेल की लड़की बताई जाती थी। एक बार जब इल्तुतमिश लाहौर का विद्रोह दबाने गया हुआ था, वह विद्रोही की कन्या बंदिनी के रूप में उसके सामने लाई गई थी और स्वयं ही सुलतान उसके सौंदर्य के जाल में बँध गया। इल्तुतमिश ने उस रूप-बाला को क्या ख़रीदा, स्वयं ही उसके हाथों में बिक गया।

शाह तुर्कान बड़े आदर-सत्कार-पूर्वक दिल्ली लाई गई। बढ़िया से बढ़िया वस्त्र और आभूषणों में उसे सुसज्जित किया गया। रहने को कुश्के-फ़ीरोज़ी नामक सुन्दर महल दिया गया। अनेक दास-दासियाँ उसकी सेवा में विनीत थीं। वह जो कहती, सुलतान वही करता। फिर भी उसके तेवर चढ़े-के-चढ़े ही रहे। वह अनखाई ही रही।

सुलतान भोजन के लिए उसके साथ बैठता, पर वह अच्छे-से-अच्छे सुस्वादु भोजन को हाथ भी न लगाती। अधिक आग्रह करने पर सूँघकर अलग रख देती। चाहे जीवन धारण करने के लिए उसे फिर कोई दूसरे उपाय करने ही पड़ते हों।

कारण पूछने पर वह सुलतान से यही कहती—"नहीं, मुझे बीमारी कुछ भी नहीं है। मुझे यह देश पसंद नहीं। यहाँ की जलवायु मेरे अनुकूल नहीं।"

सुलतान ने उत्तर में कहा—"जलवायु यहाँ रहते-रहते सहायक हो जायगी। हम भी तो इस भूमि में परदेसी ही हैं।"

"नहीं, मैं मर जाना नहीं चाहती। मुझे वहीं छोड़ आओ, जहाँ से लाए हो।"

"तुम्हारा बड़ा मूल्य जो मैंने चुकाया है, वह कौन देगा?"

"वही देगा, जिसने पाया था।"

"वह तो विद्रोहियों के साथ युद्ध में मार डाला गया।"

"तो मैं अपने को किसी दूसरे के हाथ बेच दूंगी।"

"उतनी बड़ी राजसी क़ीमत देने को कौन तैयार हो जायगा ? फिर तुम एक बार बिक चुकी हो।"

"तो तुम यही चाहते हो, मैं यहीं घुल-घुलकर मर जाऊँ ?"

इल्तुतमिश सोच-विचार में पड़ गया। वह समझ गया था, शाह तुर्कान की आँखें उस श्वेत भवन पर गड़ी थीं, जहाँ महारानी का निवास था। वह स्वयं ही पटरानी बन जाना चाहती थी। सुलतान ने उससे कहा—"अगर यह महल तुम्हारी सुख-सुविधा के योग्य नहीं, तो तुम्हारी रुचि के अनुकूल दूसरे महल का प्रबंध हो सकता है।"

"श्वेत भवन !" चिहुक उठी वह कुटिला—"उसे खाली करा सकते हो मेरे लिए ?"

"उसमें तो महारानी हमीदा और उनकी लड़की रज़िया रहती हैं।"

"तब तुम्हारा प्रेम केवल दिखावे का है। तुम मुझे उसकी लौंडी बनाने को लाए हो यहाँ, तुमने लाहौर में मुझसे विवाह करते समय क्या कहा था ! जाने भी दो अब मुझे, याद दिलाकर ही क्या हो जायगा ? अब मैं किसी भी लालच पर नहीं रहूँगी। मुझे अपने प्राणों का संकट जान पड़ता है यहाँ।"

"तुम जगह पसंद करो। अपने मन का नक़शा बनवा लो। नया महल बनवा दिया जायगा तुम्हारे लिए।"

"नहीं, वही श्वेत-भवन ! उसके सिवा और कहीं कुछ नहीं। वहाँ से हर घड़ी जामा मसजिद मेरी आँखों के सामने रहेगी और कुतुबमीनार पर से मुअज्ज़िन की पुकार हर समय मेरे मन में भगवान् का भय बनाए रखेगी।"

क्या शाह तुर्कान इसी धार्मिक प्रवृत्ति की थी ? नहीं, केवल एक बनावट-दिखावा, चाल ! अपने छोटे कुल की महिमा बढ़ाने के लिए ही वह उस पाखंड का सहारा ले रही थी। अंत में सुलतान को उसकी इच्छा के आगे

पराभूत हो जाना पड़ा। महारानी को समझा-बुझाकर श्वेत-भवन खाली करा दिया गया। रज़िया को लेकर उसकी माता हमीदा कुश्के-फ़ीरोज़ी की अधिवासिनी हो गई। वह बड़े सरल स्वभाव की अच्छे कुल में उत्पन्न हुई महिला थी। सुलतान की प्रसन्नता के लिए उसने श्वेत-भवन का मोह छोड़ दिया और इसलिए भी कि अंतःपुर का कलह पति के मानस को न कचोटे। पर क्या उस नारी के उत्सर्ग के कलह दूर हुआ ?

श्वेत-भवन या कस्रे सफ़ेद ! नहीं कहा जा सकता यह श्वेत सँगमरमर का था या सफ़ेद चूने-पलस्तर का ! उसके किसी अवशेष की अब कोई साक्षी बची नहीं है। महाकाल सभी कुछ पचा जाता है। विष्णु पर्वत के ध्वंस पर, जहाँ दास-वंश की टूटी-फूटी इमारतें अब भी खड़ी-पड़ी हैं वहीं ! पृथ्वीराज चौहान के दुर्ग के खंडहरों पर ही कदाचित् उसकी अवस्थिति होगी।

शाह तुर्कान की यह बड़ी भारी विजय थी। इससे उसने अपना गौरव बढ़ा लिया। सभी को पीछे कर वह दिल्ली के राजसिंहासन की पटरानी बन बैठी, और धीरे-धीरे समय आने पर वह अपने अयोग्य पुत्र रुक्नुद्दीन को युवराज पद के लिए तैयार करने लगी। कुछ लोग तो यह भी समझने लगे थे कि सुलतान के सबसे बड़े राजकुमार की अकाल मृत्यु का कारण भी वही थी।

बड़ी भयानक वह नारी ! सारे अंतःपुर में उसके कुचक्रों के कारण महान् विपत्ति छा गई थी। भीतर-बाहर उसके गुप्तचर फैले हुए थे, जिस सरदार को अपने विपक्ष में सुनती, उसको अपना पद और प्राण बचा लेना कठिन था। अंतःपुर की जिस रानी या परिचारिका पर उस ज़रा भी संशय हुआ नहीं कि उसके जीवन पर ही आ बनी। उसने कई राज-वंशियों, सरदारों और मलिकों से, जो प्रान्तों में सुलतान का प्रतिनिधित्व करते थे, विद्रोह करवा दिये। राज-भवनों में आग लगवा दी, ख़ज़ाने लुटवा दिये।

उसने बहुत-से मंत्रियों, सरदारों और सेनापतियों को अपने वश में कर लिया। जब सुलतान इल्तुतमिश पर पटरानी शाह तुर्कान का यह विष-रूप खुला, तो फिर उसके प्रयत्न टूटकर रह गये और केवल पश्चात्ताप ही विशाल आकार में उसके सामने मूर्तिमंत होकर खड़ा हो गया।

२

ग्वालियर की विजय के बाद जब इल्तुतमिश दिल्ली लौटकर आया, तो उसने शाह तुर्कान को अपने अयोग्य लड़के को युवराज-पद दिलाने के लिए तुला पाया। अब बाहरी शत्रुओं पर विजय पा लेनेवाला सुलतान उस भीतरी शत्रु के लिए भी कठोर हो उठा और उचित उपायों को हाथ में ले लेने के लिए कटिबद्ध हो गया।

उसने अपने प्रधान मंत्री को बुलाकर मंत्रणा की। एक निश्चय पर आकर उसने मंत्री को आज्ञा दी—"शीघ्र ही राजकुमारी रज़िया को मेरे राज्य की उतराधिकारिणी नियुक्त किये जाने की घोषणा के लिये फ़रमान जारी करो।"

प्रधान मंत्री का हृदय भी शायद पटरानी का थोड़ा-सा नमक भीगा हुआ था। उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"जहाँपनाह, राजकुमारों के होते हुए भी आप एक नारी को दिल्ली के सिंहासन पर बिठा रहे हैं। यह निश्चय ठीक नहीं जान पड़ता।"

"मंत्री, तुम पर यह सत्य अच्छी तरह खुला हुआ है कि मेरे सभी राजकुमार भोग-विलास में डूबे हुए हैं। मुझे इसका आभास बहुत पहले से था। इसीलिए मैंने आरंभ से ही रज़िया की शिक्षा-दीक्षा बिल्कुल राजकुमारों की तरह किये जाने का प्रबंध किया है। मेरी इस नीति के भेद को तुम्हें अपनी ही बुद्धि से समझ लेना चाहिये था। मैं शासन की सुविधा और प्रजा की भलाई के लिये ही इस निर्णय पर पहुँचा हूँ। अगर तुम किसी के स्वार्थ से बहकाये नहीं गये हो, तो मेरी आज्ञा का अनुसरण करो, नहीं तो मेरी मृत्यु के बाद मेरे छिन्न-भिन्न हो गये साम्राज्य में तुम्हें मेरी बात की साक्षी मिल जायगी।"

"पर राजकुमारी का नारी-स्वभाव कैसे बदला जायगा ? बिना मंत्रियों और प्रजा का साक्षात्कार किये शासन कैसे संभव हो सकेगा ? फिर क्या शासक को केवल राज-पत्रों में हस्ताक्षर ही करने होते हैं ! उसे कई उलझी हुई समस्याओं में निर्णय लेना होता है ? साहस के साथ दुष्टों को दंड देना और शत्रु का सामना करने के लिए शस्त्र बाँधकर समर-भूमि में भी जाना पड़ता है।"

'तभी तो मैंने उसके लिये धार्मिक उपदेशों के अतिरिक्त राजनीति की शिक्षा का भी प्रबंध किया। यही क्यों, मैंने उसे व्यायाम, घोड़े की सवारी और शस्त्र-संचालन का अभ्यास नहीं कराया है क्या ?"

'माफी दीजिये जहाँपनाह ! लेकिन वह हबशी याकूत, जो उन्हें घोड़े की सवारी सिखाता है।"

"उसका रंग काला है तो क्या ? वह अपनी कला में बड़ा निपुण है।"

"फिर भी, फिर भी ...."

"क्यों मंत्री, कैसे संकोच में पड़ गये ? चुप क्यों हो गये ? "

'वह हबशी जब उन्हें दोनों हाथों से पकड़कर घोड़े पर बिठाता है,...."

मंत्री फिर चुप हो गया।

"हाँ, हाँ, कहते क्यों नहीं ?"

"मैं क्या कहूँ ! सभी देखनेवाले न-जाने क्या-क्या कहते हैं; और न-जाने क्या-क्या बातें फैला देते हैं।"

"याकूत मेरा क्रीत दास है। मैंने बहुत छोटी आयु से ही उसके ऊपर बड़े-बड़े एहसान किये हैं। मेरा उस पर विश्वास है। वह रंग का काला है, दिल का काला नहीं हो सकता।"

"पर जहाँपनाह राजकुमारी एक नारी हैं। विवाह नारी की एक स्वाभाविकता है। विवाह हो जाने पर न-जाने कैसा पति उन्हें मिले ? क्या यह बात अभी से सोच लेनी नहीं है ?"

"अवश्य है।'

"तब ?"

"सोच लिया है मैंने इस समस्या को भी, सुलझा लिया है।"

"क्या बता न सकेंगे ?"

"रज़िया आजन्म अविवाहित ही रहेगी। उसको राज्याधिकार का मूल्य अपने चिरकौमार्य में चुकाना पड़ेगा। राजमुकुट और राजदंड उसे सौंपने से पहले यह पवित्र प्रतिज्ञा धर्म की साक्षी पर ले ली जायगी।"

"जहाँपनाह चिरंजीवी हों! पर अभी से आपको उत्तराधिकारी की इतनी चिंता करने की आवश्यकता ही क्या है? संभव है, कोई राजकुमार अच्छे मार्ग पर आ जाय। मनुष्य को बनते-बिगड़ते क्या देर लगती है।"

"चारों तरफ शत्रु-समूह से घिरा हुआ दिल्ली का सम्राट्! उसकी आयु का ठिकाना ही क्या है?"

'राजकुमारी को उत्तराधिकारिणी बना देने की आपकी यह इच्छा भीतर-ही-भीतर प्रसिद्ध कर दी जा सकती है कि राजकुमारों में अपने चरित्र को सुधार लेने की इच्छा जाग्रत हो जाय। लेकिन मेरी राय में अभी ऐसी कोई राजाज्ञा न निकाली जाय, भगवान् आपको दीर्घजीवी करें।"

"सुलतान का यह निर्णय बिना किसी राजसी फ़रमान के राजभवन में फैला दिया गया। इससे राजकुमारों के स्वभाव में कोई परिवर्त्तन हुआ या नहीं, भगवान् ही जानें, पर महारानी शाह तुर्कान के हृदय में भयानक ज्वाला गगन-चुंबी हो गई। उसने दोनों पैरों की जूतियाँ दोनों हाथों में लेकर तीन बार धरती में मारीं और अपने भीतर की दानवी को जगाया।

वह बोली—"बूढ़े शहंशाह की आयु न जाने किस परनाले में बह गई। शरीअत के विरुद्ध एक औरत को दिल्ली के तख्त पर बिठाना चाहता है!" उसने फिर जूता भूमि पर मारा—"नहीं, यह नहीं होने दूंगी। मैं अपने श्वेत-भवन के द्वार उसके लिए बंद कर लूँगी। वह काफ़िर मेरे महल के भीतर नहीं आने पावेगा।"

ग्वालियर जीत लेने के बाद सुलतान ने मालवा पर चढ़ाई कर दी। भीवसा के प्रमुख मंदिरों को जीतकर वह उज्जैन की तरफ बढ़ा। सुलतान के

भीतर धर्म-प्रचार की जैसी भी भावना हो, क्या उसकी सैन्य-शक्ति भी उसी से प्रेरित थी ?

कदापि नहीं ! वे हिंसा के पुजारी, उनके भीतर केवल पर द्रव्य और परदारा की लूटपाट ही सर्वोपरि थी । धार्मिकता ? यह कैसी धार्मिकता है, जो अपने धर्म के आगे और सभी धर्मों को ढकोसला समझती है। तलवार की नोक से धर्म को फैलाकर संसार में कौन-सा भाईचारा बढ़ा है ?

क्षिप्रा नदी के तट पर उज्जैन में वह विशाल महाकाल का मंदिर ! कहते हैं, तीन सौ वर्ष उसके निर्माण में लगे थे । कितने ही राजा-श्रेष्ठियों की धन-संपत्ति उसमें समाई थी । अगणित मजदूरों-कारीगरों के श्रम-बिंदुओं से उसका निर्माण हुआ था । करोड़ों धर्मप्राण व्यक्तियों की श्रद्धा और सहारे का वह प्रतिष्ठान ! पर सुलतान की दृष्टि में वह काफिरों का अन्धकार, उसमें वे भटक रहे थे । उसमें प्रकाश दिखाकर उन्हें पथभ्रष्ट होकर बचाना उसने अपना पवित्र कर्त्तव्य समझा । उसकी सेना उधर बढ़ गई ।

महाराज को जब यह समाचार मिला, तो उन्होंने सेनापति को बुलाकर आक्रामक का सामना करने की आज्ञा दी, तो वह सिपाहियों और उनके लिए अस्त्र-शस्त्र जुटाने की तैयारी में लगा । मंदिर के प्रधान पुजारी को जब यह सूचना मिली, तो वह घबरा उठा । वह किस चीज़ से आततायी का सामना करे ? क्या फल-फूल-नैवेद्य से, अर्घ्य-आरती से या शंख-घंट से ?

वह माला लेकर बैठ गया महाकाल मूर्ति के आगे उच्च स्वर से प्रार्थना करने लगा—"हे महाकाल ! सारी सृष्टि तुम्हारा ग्रास है । हम इतने समय से तीनों काल तुम्हारी उपासना कर रहे हैं । अपने रुद्र-रूप को जागरित करो । अपने तीसरे प्रलयंकर नेत्र को खोलकर इस विधर्मी की सारी चेष्टा और सारे सैन्यबल को भस्म कर देना तुम्हारे लिए क्या कठिन है ?"

कौन अपने दृष्टि-कोण में सही है ? एक दूसरे को काफिर कहता है और दूसरा पहले को विधर्मी ! धर्म किसके साथ है, कौन बता सकता है ?

हाँ, कुछ भी नहीं हुआ ! महाराज की सैन्य शक्ति उस आक्रमणकारी का अवरोध न कर सकी, न पुजारी का ध्यान आवाहन ही उस पत्थर की

प्रतिमा में प्राणों की प्रतिष्ठा कर सका। सुलतान की सेना ने मंदिर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया! शताब्दियों का जमा धन-सुर्वण, रत्न-मणि लूट लिया। कुछ राजकोष के लिए संग्रहीत हुआ कुछ, सैनिकों के हिस्से में आ गया। विक्रमादित्य तथा अन्य राजाओं की धातु-मूर्तियाँ उठा ले गये। पत्थर की मूर्तियाँ नष्ट-भ्रष्ट कर धरती पर बिछा गये। कुछ अपमानित करने के लिए पैरों तले रौंदने के उद्देश्य से साथ उठा ले गये दिल्ली को।

सुलतान ने राजस्थान के अनेक भाग पहले ही जीत लिए थे। फिर वह कन्नौज की ओर बढ़ा, फिर बनारस को विजित कर दिल्ली लौट आया। वहाँ उसने कुछ समय राजधानी में अपनी सत्ता को दृढ़ करने में लगाया और अन्तःपुर के भीतर की शांति-स्थापना में। एकाएक सीमा पर बानियान के एक विद्रोह का समाचार उसे मिला और वह बाहरी संकट को भीतरी संकट से अधिक भयानक समझ उसका सामना करने की तैयारी में लगा।

३

शाह तुर्कान अपने निश्चय की बड़ी पक्की थी। जिस वस्तु को वह मन से चाहती, उसकी बहुत स्पष्ट कल्पना कर लेती थी। उसके रूप और स्वार्थ ने उसकी इस चावक शक्ति को बढ़ाया था। यही कारण था, एक साधारण स्थिति में उत्पन्न होकर उसने दास-वंश के सबसे प्रतापी सुलतान की बागडोर बहुत समय तक अपने हाथों में ले ली थी।

अब सुलतान का यौवन ढल चुका था, कामनाओं के अंधे जाल से बाहर निकल आया वह। उस नागिन महारानी का नग्न रूप खुल पड़ा उसकी आँखों में। प्रजा और राज्य के भविष्य की चिंता होने लगी उसे। नालायक राज-कुमारों पर से मन हटा लिया उसने। एकमात्र आशा केंद्रित हो गई उसकी राजकुमारी रज़िया पर।

तब उसने आँखों की खिड़की खोलकर अपने भीतर झाँका। उसे अपना बीता हुआ चित्र दिखाई दिया और दिखाई दी वह नवयौवना सुन्दरी शाह तुर्कान। उसे अपनी आँखों का दोष अब समझ में आया। उसने अपनी निर्णय-शक्ति को अब धिक्कारा। किस कुलटा और कलंकिनी के लिए उसने अपनी धर्मपरायण पतिव्रता नारी की उपेक्षा कर दी।

उसने आकाश की ओर हाथ उठाकर प्रतिज्ञा की—"अब नहीं होने पावेगा यह। मैंने समय पर ही उसके जादू को तोड़ दिया। मैं अब उसका मुँह नहीं देखूँगा। उस पापीयसी के भवन की ओर अपना प्रवेश नहीं बढ़ाऊँगा, हे भगवान्, मेरी सहायता कर!"

जब इल्तुतमिश इस विचार की दृढ़ता साध रहा था, उसी समय शाह तुर्कान मसनद का सहारा छोड़कर आसन पर उठ बैठी। झल्ला कर उसने पुकारा—"अमीना!"

अमीना उसकी निकटतम दासी थी। मन-ही-मन कुढ़कर उसने कहा—"लो, इनको तो अभी फिर प्यास लग गयी। ज़रा भी तो चैन से बैठने नहीं देती।"

न-जाने किसके लिए स्फटिक का गिलास भरा ही था उसने, झट से उठा कर ले गयी महारानी के पास।

"मर जा छोकरी! इसे लाने को किसने कहा तुझसे? जा, मसऊद खोजे को बुलाकर ले आ मेरे पास यहीं, अभी।"

'यहीं? आपके शयन-कक्ष में?" दासी ने चौंककर पूछा।

"हाँ-हाँ, यहीं।"

दासी चली गई। अपनी कोठरी में जाकर उसने वह गिलास अपने मुँह में डाल रिक्त कर दिया। खूँटी पर टंगा बुर्क़ा खींच लिया। उसी से मुँह पोंछ-कर उसने बुर्क़ा पहन लिया और ठुमुक-ठुमुक यह सोचती-विचारती सिंह द्वार तक चली गई कि मसऊद को महारानी ने क्यों बुला लिया?

सिंहद्वार पर मसऊद अफ़ीम की गोली निगल भूमि पर ऊँघता हुआ कोई मधुर दिवास्वप्न देख रहा था। महल की दीवार के सहारे रक्खी तिरछी

ढाल को अपना तकिया बना रक्खा था। उसका बर्छा द्वार के पास खड़ा था और तलवार पैरों के नीचे दबी पड़ी थी।

बुर्के का आँखों पर पड़ा पर्दा उठाकर दूर से अमीना ने देखा, खोजा सो रहा था। वह धीरे-धीरे मसऊद की तरफ बढ़ी। अब तो उसकी नाक पर बजती हुई रागनी भी सुन पड़ी। किसी तरह मुँह पर बुर्का ठूँसकर उसने अपनी हँसी पर अधिकार पाया। चुपचाप उसके आगे जाकर खड़ी हो गई। उसकी आहट और छाया से भी जब उसका सपना न टूटा, तो अमीना पैर पटककर फुसफुसाई—'फिऽऽस्स !"

मसऊद संभलकर उठ बैठा—"कौन है ?" उसने पैर के नीचे तलवार की मूँठ पर अपना हाथ रक्खा।

"तेरी तक़दीर खुल गई मसऊद।"

"अमीना, तेरा चेहरा खुले, तो जानूँ भी। नहीं तो चारों तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा, रात-ही-रात।" उसने तलवार से उसका बुर्क़ा उठाने की चेष्टा की।

'मरे, बकता क्या है ? बराबर हँसी ही सूझती है तुझे।" अमीना एक पग पीछे को हट गई।

"भागती कहाँ को है ? मेरे पास क्या संकट है तेरे लिए ? इधर आ, ज़रा मँह तो खोल। आज बड़ी महलों में रहनेवाली बन गई तू ! तवा माँजते, सिगड़ी सुलगाते तेरी उमर बीत गई होती।"

"तेरी असलियत का भी मुझे पूरा पता है। फिर बता दँगी। अभी फौरन् ही तुझे महारानी शाह तुर्कान ने याद किया है।"

"मुझे ? अभी फौरन ही ?"

मसऊद तुरन्त ही बड़े अदब-क़ायदे से गर्दन झुका महारानी के सामने जाकर खड़ा हो गया।

शाह तुर्कान ने झिड़की-भरे स्वर में पुकारा—"मसऊद !"

वह घबराकर बोला—"महारानी के दुश्मनों को जहन्नुम नसीब हो।"

शाह तुर्कान—"जानता भी है मेरा दुश्मन कौन है ?"

"कोई भी क्यों न हो, सरकार ?"

"तो कान खोलकर सुन लो, मेरा दुश्मन है सुलतान।'

"कौन सुलतान ?" संशय में पड़कर खोजे ने पूछा।

शाह तुर्कान ने उत्तर देने में कुछ भी देर नहीं लगाई—"दिल्ली का सुलतान।"

मसऊद को पैरों तले की धरती में गड्ढा होता-सा जान पड़ा। वह आँखें नीची कर बोला—"दिल्ली का सुलतान ? कौन ?"

"हाँ-हाँ, दिल्ली का सुलतान, यही इल्तुतमिश, रज़िया का बाप!"

"खुदा न करे! आपके मुँह से फिर यह लफ्ज़ न निकले। आपकी गिनती में भूल हो गई हो।"

"अरे बुद्धू, तेरी तो दसों उँगलियाँ पूरी-पूरी हैं न। मैं गिनाती हूँ तुझे सही-सही गिनती। चल, पहली बात। पर पहले गर्दन उठा सीधा देख।" शाह तुर्कान ने हीरा-जड़ी अँगूठी पहनी उँगली से उसका सिर ऊपर उठा दिया।

महारानी की उँगली का स्पर्श पाकर मसऊद के सिर से पैरों तक बिजली कौंध गई। वह बोला—"महारानी की जय हो!"

"तलवार कहाँ है तेरी ? और भाला ?"

"सरकार हैं, ड्योढ़ी पर हैं। आपके सामने हथियारों से लैस होकर आने की बदतमीज़ी कैसे करता ?"

'नहीं, पहले सब कुछ लेकर आ। तभी तेरी समझ खुलेगी ओर मेरी सच्चाई जान सकेगा।"

मसऊद अपने शस्त्र धारण करने चला गया। अमीना शाह तुर्कान के सामने खड़ी-खड़ी मुस्करा रही थी।

"क्यों अमीना, मेरा फैसला पसंद आया तुझे ?"

"हज़ार बार।"

"अमीना, मैं अपना घर और मुल्क छोड़कर इस परदेस में आई हूँ राज-करने। इस बूढ़े की जूतियाँ खाने को क्या ?"

अमीना ने बंद होठों के भीतर दाँतों के नीचे अपनी जीभ काट ली। कमर में तलवार और पीठ में ढाल बाँध, हाथ में बरछा लेकर मसऊद आ पहुंचा और फिर उसने भूमि पर बहुत नीचे तक झुककर कोर्निस की।

"हो गया ! हो गया ! अधिक दिखावे की जरूरत नहीं है मुझे। मैं काम चाहती हूँ, काम। है तेरे पास वह हिम्मत ?"

"है क्यों नहीं ?"

"नहीं तो अमीना को सौंप दे अपने तमाम हथियार और उसकी चूड़ियाँ पहनकर चला जा।"

"सरकार के हुक्म की तामील करूँगा क्यों नहीं ? आपके ही नमक से तो जीता हूँ। आज्ञा दीजिये।"

"अब उस बूढ़े को मेरे महल के द्वार के भीतर घुसने देना नहीं है।"

"सरकार किस बूढ़े को ?" काँपती हुई आवाज़ में मसऊद ने पूछा।

"उसी बूढ़े को, सुलतान इल्तुतमिश जिसका नाम है।"

"लेकिन..."

"कोई लफ्ज़ नहीं सुनूँगी, अमीना, छीन ले इसके हथियार।"

तलवार और बरछे को बड़ी मज़बूती से पकड़कर मसऊद बोला—"सरकार, बरसों से आपका नमक खा रहा हूँ। उसे क्यों न अदा करूँगा। आप का हुक्म सिर-आँखों पर।"

"तो मेरा हुक्म कील से तेरी खोपड़ी में खोदना पड़ेगा क्या ?"

मसऊद ने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—"मैं समझ गया।"

"तो उसे और उसके किसी भी सहायक को नहीं घुसने दोगे इस श्वेत-भवन के भीतर। इसे फिर समझाने की ज़रूरत न पड़े।"

"नहीं पड़ेगी। पर एक प्रार्थना है,...."

"तुझे उसकी सहायता नहीं करनी चाहिए। तुझे तेरी तनख्वाह मैं देती हूँ। तू उसका अपराध समझ ले। ले, गिन। उसका सबसे पहला अपराध है—वह मेरे बेटे रुक्नुद्दीन को युवराज बनाने से इनकार कर रहा है, उसका दूसरा क़सूर

है, वह एक औरत को दिल्ली के तख्त पर बिठाना चाहता है। इसके समर्थन के लिये कुरान, हदीस या शरियत में कोई लेख नहीं है।"

"नहीं, नहीं, यह तो मुझे सब मालूम है। मेरी प्रार्थना इस अमीना के लिये है।"—मसऊद ने अमीना की ओर उँगली उठाई। अमीना ने फिर अपनी आँखों पर का परदा भी बुर्क़े से ढक लिया।

मसऊद कहने लगा—"मेरा मतलब इसी अमीना से है। यह बाज़ारों में मुँह खोलकर चली जाती है, जहाँ गोरे-काले, अच्छे-बुरे सभी लोगों की नज़रें इस पर पड़ती हैं। लेकिन मेरे सामने से जब यह आती-जाती है, तो इसका मुँह क्या, यह अपनी उँगुलियों को भी बुर्क़े के भीतर समेट लेती है। यह सिर्फ मुझ ही से परदा क्यों करती है? क्या मैं कोई दीन-ईमान नहीं रखता?"

शाह तुर्कान अपनी हँसी नहीं रोक सकीं और मसऊद की आँखें आर्द्र हो उठीं। वह गद्-गद् कंठ से कहने लगा—"आप इससे पूछिए तो सही, क्या बात है?"

"नहीं, बात क्या हो सकती है? केवल एक पुराना अभ्यास।"

"एक नौकरानी का कैसा परदा? आप हिंदुस्तान की इतनी बड़ी महारानी, आप मेरे सामने कभी परदा नहीं करतीं।"

"यह भी नहीं करेगी।" कहते हुए शाह तुर्कान ने दोनों हाथों से अमीना का बुर्क़ा उतारकर अलग कर दिया।

वे दोनों हँसती हुई महल के भीतर चली गईं। मसऊद भी इस प्रसन्नता को लेकर पहरे पर को चला। सहसा वह उदास होकर सोचने लगा—"जब सुलतान सलामत की सवारी महारानी से समझौता करने आवेगी, तो मैं एक साधारण कुँजड़े का बेटा कैसे उनकी राह रोक लूँगा? उनके साथी अंगरक्षक सिपाही क्या सिर को मेरे कंधों पर साबुत रहने देंगे?" वह बेचैन हो उठा। उसके हाथ का बरछा उसके हाथ से भूमि पर गिर पड़ा।

उसने अमीना को अन्तःपुर से बाहर को निकलता हुआ देखा, तो झट

से झुककर बरछा उठा लिया। उसने देखा, अमीना ने मुह पर का परदा उलट रक्खा था, पर उसकी नज़र कहीं और थी।

मसऊद ने उसका हाथ पकड़ लिया। करुणा और त्रास में भीगे हुए शब्दों में उसने कहा—"अमीना! अमीना!"

"अरे बौने, तेरा यह चाँद पकड़ने का हौसला! रास्ता छोड़, हट, जाने दे मुझे। महारानी का बहुत ज़रूरी संदेशा लिये हुए जा रही हूँ। कहीं देर हो गई तो?"

"महारानी को भूल जा अमीना, सुलतान की क्या कोई जगह नहीं? महारानी दासी, मैं-तू, अमीर-सरदार, मुल्ला-काजी ये सब उन्हीं के कारण अपनी-अपनी जगहों पर हैं।" इतना ही कहकर मसऊद चुप हो गया उसका दृष्टिकोण पकड़ने के लिए।

अमीना कोई उत्तर न देकर गहरे विचार में डूब गई। "क्या तेरी जीभ पर लकवा पड़ गया है?" मसऊद ने पूछा।

"हाथ तो छोड़।"

मसऊद ने उसका हाथ छोड़ते हुए कहा—"तेरे प्रेम के लिए नहीं, सुलतान की इज्ज़त रखने के लिए।"

"बेगम की नौकरी छोड़कर चला क्यों नहीं जाता?"

"तू भी छोड़ने को तैयार है तो यही सही। चल अभी।"

"तेरे पीछे कोई नहीं, आगे की भी कोई आशा नहीं, मेरे सब कुछ हैं। मैं क्यों मरूँ तेरे लिए। हर तरफ शाह तुर्कान के जासूस घूम रहे हैं।"

मसऊद अब घबराकर सोचने लगा—'अगर कहीं यही जासूस हुई, तो?" अपनी भावना बदलकर वह बोला—"शाह तुर्कान की जय हो।" वह इधर-उधर घूमकर पहरा देने लगा।

अब मसऊद को रोक, उसके नज़दीक मुँह ले जाकर वह बोली—"इकराम की दूकान कहाँ पर है? !"

"कौन इकराम?"

"लोहार, तेरा चचेरा भाई।"

"कुतुब साहब की मज़ार से शमशी तालाब की ओर सीधी चली जा नाक की सीध में। पीपल के पुराने पेड़ की छाया में उसने अपना छप्पर बाँध रक्खा है, वहीं धौंकनी चलाकर वह लाल लोहे पर अपना हथौड़ा पीटता रहता हैं। क्या काम है उससे ?"

बुर्क़े के भीतर से लोहे की दो सींकें निकालकर वह कुछ कहना चाहती थी। बीच ही में मसऊद बोला—"कबाब भूनने के लिए क्या छोटी पड़ गईं ये ?"

"नहीं, तेरी नमकहलाली का इम्तहान लिया जायगा इनसे। इसलिए समझ-बूझकर ही मुँह खोलना। नहीं तो किसी की आँखों की तरह तेरी ही आँखों में घोप दी जावेंगी ये दोनों।"

घबरा उठा मसऊद। बोला—"किसकी आँखें फोड़ दी जावेंगी ?"

"शाह तुर्कान को सीधी तरह नहीं देख सकतीं जो। मसऊद,तेरे भाग्य का सितारा चमक उठेगा, अगर तू थोड़ी भी हिम्मत कर ले तो। इस दरवाजे पर ऊँघते रहने से छुट्टी पा जायगा।"

उसने मन में सोचा—"इस पहरे पर के कठिन कर्त्तव्य से तो अच्छा ही होगा।" प्रकट में पूछने लगा—"हाँ, अमीना, मैं तैयार हूँ, बता क्या करना होगा ?"

"अभी नहीं, बताऊँगी फिर महारानी से तेरी सिफ़ारिश करने ही पर तो।"

इसी समय ढोल-नगाड़े और तुरहियों का शब्द सुनाई दिया। मसऊद ने पूछा—"यह बाजा कैसा ?"

"तुझे कुछ भी मालूम नहीं ? सुलतान बानियान की चढ़ाई पर जा रहे हैं, वहाँ की बग़ावत दबाने के लिए।"—कहकर अमीना चली गई।

मसऊद ने चैन की साँस ली—"चलो,कुछ दिन के लिए तो छुट्टी मिली।" तभी उसे यह चिंता होने लगी कि अगर वह कहीं महारानी से बिदा लेने आ गये तो ?……" उसने अपना साहस बढ़ाने के लिए अफीम की डिबिया खोली, पर वह खाली थी !

४

दिल्ली-भर में इस समाचार को फैलते देर नहीं लगी कि सुलतान वानियान की चढ़ाई से वापस आ रहे हैं। किसी ने कहा—"इतनी जल्दी क्यों आ गये ?" दूसरे ने उत्तर दिया—"दुश्मन ने फौरन ही हथियार डाल दिये होंगे।" फिर कोई बोला—"विजयी सुलतान बाजे-गाजे के साथ हाथी पर सवार होकर आते हैं। इस तरह चुपचाप बहुत थोड़े-से आदमियों को लेकर पालकी में ढके-छिपे होकर क्यों ?"

बात संशय की थी। शीघ्र ही यह सच्चाई भी फैल गई कि सुलतान लड़ाई के मैदान से घायल होकर लौट रहे हैं। विद्रोह शांत कर आये हैं वह, पर उनके पेट में दुश्मन का ज़हरीला तीर लग गया। सारी राजधानी में उदासी छा गई। जगह-जगह भीड़ यह देखने को इकट्ठी होने लगी कि सुलतान किसके महल में जाकर किस रानी का भाग्य बढ़ाते हैं।

बाज़ार में यह समाचार सुनकर अमीना क़स्रे सफ़ेद की तरफ तीर-सी छूटी। मसऊद ने उसकी राह रोककर पूछा—"क्या खबर है ? ऐसी उतावली में क्यों जा रही है ?"

"सुलतान लड़ाई के मैदान से घायल होकर लौट रहे हैं, अगर वह इधर आ गये तो खबरदार, तुम महारानी की कही हुई बात पर कुछ ध्यान न देना। मै जाकर उन्हें समझाती हूँ कि ऐसे बुरे समय में उन्हें सुलतान के लिए प्रार्थना ही करनी उचित है।"

अमीना महल में चली गई और मसऊद ने अनुभव किया, उसके प्राणों में चुभा हुआ तीखा काँटा निकल गया। उसने भगवान् के लिए हाथ जोड़े कि वह एक बड़े कठिन कर्त्तव्य के भार से मुक्त हो गया। उसने सुलतान के शीघ्र आरोग्य हो जाने को प्रार्थना की।

कुछ लोगों ने यही अनुमान लगाया था कि सुलतान अपनी प्यारी बेगम

शाह तुर्कान के ही महल में पधारेंगे। जिनके मन में संशय था, वे यह देखने को दौड़े कि देखें सुलतान कहाँ जाते हैं।

सिपाहियों ने सुलतान की पालकी की ओर बढ़नेवाली भीड़ को हटा दिया। भीड़ क़स्र सफ़ेद राजभवन का मार्ग छोड़कर आगे बढ़ गई। लोगों ने समझ लिया शाह तुर्कान और सुलतान के बीच के वैमनस्य की बात सच ही है।

सुलतान की पालकी हजरत कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की दरगाह में ले जाई गई। यह समझा गया था कि ख्वाजा साहब की दुआ से उनके आरोग्य-लाभ में बड़ी मदद मिलेगी।

दौड़ती-हाँफती हुई अमीना शाह तुर्कान के पास जा पहुँची—"महारानीजी, बड़ा बुरा समाचार है।"

"क्या किसी दुश्मन ने चढ़ाई कर दी दिल्ली पर? जब सुलतान की नीयत में फ़र्क आ गया हो, तो किसी को भी ऐसा कर देना चाहिए।"

"ऐसे बुरे शब्द मुँह से न निकालिए महारानीजी। सुलतान लड़ाई के मैदान से घायल होकर लौट आए हैं, जिससे उनकी विजय की सारी खुशी मिट्टी में मिल गई है। बुर्खे में होकर कुछ दूर तक चलिए, इससे सुलतान की आधी बीमारी चली जायगी। मुझे हुक्म दीजिये कि मैं उनकी पालकी यहीं ले आऊँ।"

"मुझसे कहाँ चलने को कहती है तू? वे ही यहाँ क्यों न आवें?"

"अपने मन में से उनके लिए जो कुछ मैल जमा है, सब निकाल दीजिये। न-जाने क्या होने को है! अगर उन्होंने यहाँ न आने का भी तय कर लिया है तो मैं हाथ जोड़, बिनती कर, उनकी पालकी यहीं लिवा लाती हूँ।" अमीना बेगम के प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही बाहर को दौड़ गई।

ख्वाजा साहब की दरगाह को चली गई थी सुलतान की पालकी। मार्ग में कुश्के फ़िरोज़ी महल था, वहाँ नहीं गई। इससे अमीना को कुछ भरोसा हुआ। वह कुछ लोगों की भीड़ से होती हुई दरगाह में जा पहुँची। फाटक पर

उसे सिपाहियों ने रोक लिया। वह बोली—"महारानी का संदेशा लेकर जा रही हूँ। तुम मुझे रोकनेवाले कौन हो ? नहीं पहचानते मुझे ?"

वहाँ से निकलकर वह आँगन में होती हुई भीतरी फाटक पर पहुँच गई। यहां पर भी उसकी रोक एक सरदार की सहायता से हटा दी गई। वह दरगाह में पहुँच गई।

वहाँ जाकर उसने देखा। सुलतान के दो हकीम उनकी नब्ज़ टटोल कर अपनी रायें मिला रहे थे। सुलतान बेहोश थे। प्रलाप में कुछ बक रहे थे।

अमीना ने सुना—"उस पत्थर को निकाल दो जो मसजिद के प्रवेश-द्वार पर गाड़ दिया गया था। ···नहीं, यह नहीं, वह दूसरा पत्थर उज्जैन के महाकाल के मंदिर से जो यहां लाया गया। किसी के देवता को पैरों से रौंदने पर हमारे हाथ कुछ नहीं लगेगा। सब धर्मों की भीतरी रीढ़ एक चीज की बनी है। उसमें एक ही साँस है।"

किसीं ने कहा—"जहाँपनाह, आप सपने में बोल रहे हैं। कोई काली रूह आपको बहका रही है।"

"काली रूह ? नहीं वह महाकाल का मंदिर ! वह मेरे हुक्म से तोड़ दिया गया। कोई है क्या, जो उसे फिर वैसा ही बना सके ?"

हकीम साहब बोले—"सरकार, आप ज़रा कम बोलिये। इससे आपकी कमजोरी बढ़ रही है।"

"मेरी कमजोरी घटानेवाला तू कौन है ? जब उसे तोड़ने का हुक्म दिया गया था, तो तू कहाँ था ?"

दोनों हकीमों ने आपस में सलाह कर निश्चय किया कि तीर का विष रक्त में मिल गया है। रक्त शुद्ध करने के लिए इन्हें जुलाब तो दिया ही जायगा। इनके संबंधियों में से अगर कोई इनका घाव चूसकर जहरीला खून थूकता जाय तो वहुत जल्दी इनको लाभ पहुँच सकता है।

दरगाह के प्रतिनिधि बोले—"मुझे तो यह राय पसंद है, लेकिन खून थूकने से दरगाह अपवित्र हो जायगी, इसलिए इन्हें महल में ही पहुंचाइये शीघ्र-से-शीघ्र, क्योंकि सुलतान की हालत बड़ी चिंताजनक है।"

सिपहसालार जो उनके साथ आया था, बोला—"लेकिन किस महल में ?"

"इनकी ज़िंदगी जिन्हें सबसे प्यारी हो।"

अमीना को अपनी इच्छा पूरी करने का अवसर मिला—"कस्रे सफ़ेद में ले चलिए। वहाँ इनकी सेवा-शुश्रूषा का सबसे अच्छा प्रबन्ध हो जायगा।"

सिपहसालार ने पूछा—"इनका रक्त चूसने के लिए तैयार कौन-कौन हैं वहाँ ?"

"महारानी हैं, राजकुमार हैं, नौकर-चाकर हैं और यह दासी भी तो।"

एक मंत्री जो सुलतान और शाह तुर्कान के बीच में बढ़ते हुए संघर्ष से परिचित था, बोला—"लेकिन कस्रे सफ़ेद से कुश्के फ़ीरोजी नज़दीक है।"

"लेकिन महारानी शाह तुर्कान अपनी सेवा से इन्हें जल्दी ही अच्छा कर देंगी।" अमीना बोली।

मंत्री ने मन-ही-मन शाह तुर्कान की सेवा समझकर कहा—"पर हमें समय की बचत करनी है। महारानी कुश्के फ़ीरोजी में आकर भी सुलतान को अपनी सेवा दे सकती हैं।"

अमीना भागी कस्रे-सफेद की तरफ। शाह तुर्कान अन्तःपुर के द्वार पर ही उसकी प्रतीक्षा करती हुई मिली। उसने पूछा—"क्या समाचार है ?"

दौड़-भाग से अमीना का मुख लाल वर्ण का हो गया था। साँस जल्दी-जल्दी चलने लगी थी। उसने हाथ से कुछ क्षण ठहर जाने का संकेत दिया। फिर कुछ गहरी साँसें लेकर बोली—"बड़े संकट में पड़े हैं सुलतान अचेत होकर। दुश्मन के विष-बुझे तीर ने उनके पेट में घुसकर उनकी हालत ख़राब कर दी है। यदि कोई उनके घाव में मुँह से ज़हरीला ख़ून चूसकर निकाल दे, तो, बहुत कुछ आशा हो सकती है। आप..."

शाह तुर्कान के तेवर चढ़ गये, आँखें लाल ! बीच ही में बोली—"छोकरी, तेरी यह सब कहने की मंशा क्या है ?"

"सुलतान के जीवन की रक्षा।"

"हाँ, और उसका जहर चूसकर मैं मर जाऊँ ?"

"हकीम साहब कहते हैं ख़ून थूक दिया जायगा, उसे निगलेगा कौन ? इसलिए मरेगा कोई नही ।"

"और सुलतान जीवित हो जायगा कि वह मेरे बेटे रुक्नुद्दीन को राजसिंहासन के उत्तराधिकार से हटाकर अपनी लड़की के सिर पर राजमुकुट रख दे। सरासर शरियत के विरुद्ध! विधान के विरुद्ध! मेरी इच्छा के विरुद्ध!"

"महारानीजी, उनका हृदय शुद्ध करने के लिए ही तो मैं आपको यह राय दे रही हूँ, जब आप उनका जीवन बचा देंगी, तो फिर कोई कारण नहीं कि वह आपका उपकार भूल जायँ और अपना निश्चय बदल न दें।"

शाह तुर्कान कुछ सोचकर बोली—"लेकिन एक बात है।"....वह फिर सोच में पड़ गई।

"महारानीजी, जल्दी कीजिये। नहीं तो यह सुनहरा अवसर आपकी सौत के हाथ लग जायगा और रज़िया सुलताना बनकर दिल्ली के राजसिंहासन में सुशोभित हो जायगी। मैं सुलतान की पालकी में अपना कंधा देकर भी अभी यहाँ ला सकती हूँ।"

"जा, ले आ फिर। पर असल में ख़ून चूसेगी तू और नाम प्रकट किया जायगा मेरा। जब राजकुमार रुक्नुद्दीन दिल्ली का राजमुकुट पहन लेगा, तो मैं तेरी बड़ी-से-बड़ी इच्छा पूरी कर दूँगी।"

अमीना फिर तेजी से दरगाह की ओर भागी। दरवाजे पर मसऊद ने फिर उसका हाथ पकड़ लिया—"अरी, आज बड़े फेरे लग रहे हैं तेरे। मुझे भी तो बता कौन पसंद आ गया तुझे ?"

वह अपना हाथ छुड़ाकर भाग गई। दरगाह में अब कोई भी नहीं था। सुलतान की पालकी सीधे कुश्के-फ़ीरोज़ी के राजभवन में चली गई थी। वह दरगाह से दूर ही कितना था!

अब क्या करे अमीना ? उसकी स्वामिभक्ति कुछ भी काम नहीं आई। अब कैसे उसकी बड़ी-से-बड़ी इच्छा पूरी हो। वह अधूरी ही बात छोड़ देनेवाली नारी नहीं थी। वह सीधे कुश्के-फ़ीरोज़ी की ओर चली।

दौड़ी-दौड़ी वहाँ पहुँच गयी। फाटक पर बहुत-सी भीड़ जमा हो गई थी। सबको हटाती हुई बोली—"क्या भीड़ जमा कर रखी है यहाँ पर ? हटो, जाओ, अपना-अपना काम करो।"

फिर उसने दरबान के पास जाकर बड़े चिंता भरे स्वर में कहा—"सुलतान चिरंजीवी हों, कैसे हैं वह ? उनकी कुशल जानने के लिए बड़ी महारानी बड़ी व्याकुल हैं। वह स्वयं ही आ रही थीं। मैं ही उन्हें मना कर आई हूँ।" वह भीतर को बढ़ने लगी।

दरबान पर उसकी माया चल गई। उसने उसके लिए मार्ग छोड़ दिया, पर भीतरी चौक में फिर उसका प्रवेश रोक दिया गया। पहरे पर के सिपाही ने उसे पहचानने से इंकार कर दिया—"नहीं, हकीम साहब और प्रधान मंत्री की कठोर चेतावनी है कि किसी को भी भीतर न आने दिया जाय।"

अमीना मुख पर बड़ी उदास मुद्रा पहनकर बोली—"सुलतान का जीवन बड़े संकट में है। बड़ी महारानी उन्हें सबसे प्रिय हैं, महारानी का प्रेम भी क्या उन पर कुछ कम है ? फिर क्यों नहीं सुलतान को उनके महल में ले जाकर उनकी सेवा का अवसर दिया गया ? मुझे भीतर जाने दो। मैं महारानी का एक विशेष संदेशा लेकर आई हूँ।"

"उसे कहो भी तो। उनके पास तक पहुँचा दिया जायगा।"

"उन्हीं से कहने की बात है, संभव है, दवा से ज्यादा उस बात से उन्हें फायदा पहुँच जाय।"

सिपाही ने एक सहकारी के मार्फत किसी को भीतर से बुलवा लिया। एक नौकरानी आ पहुँची। अमीना की बातें सुनकर उसने कहा—"पर भीतर जाकर किससे कहोगी, सुलतान अपने होश ही में नहीं हैं।"

"छोटी महारानी से ही बातें कर लूंगी।"

दासी को भीतर रहस्य का पता था। वह बोली—"पर उनका मन तुम्हारी रानी की ओर से साफ नहीं है।"

अमीना उस दासी का हाथ पकड़कर एक ओर को ले जाकर धीरे-धीरे कहने लगी—"आज उन दोनों रानियों पर एक ही तरह की विपत्ति आ पड़ी है। एक ही चोट से वे दोनों घायल हैं। अवसर है, हम थोड़ी भी कोशिश करें, तो उन दोनों के दिलों का काँटा निकल सकता है। हमारा भी एक कर्तव्य है। तुम मेरी सहायता करो न।"

"क्या सहायता चाहती हो तुम?"

"मुझे छोटी रानी के पास ले चलो।"

दासी को दया आ गई—"चलो।"

दासी अनेक सीढ़ियों का अतिक्रमण कर उसे ऊपरी मंजिल में ले गई। वहाँ ले जाकर उसने अमीना को एक चौकी में बिठाकर कहा—"तुम बैठो यहाँ। मैं अवसर पाकर उनके कान में तुम्हारी बात छोड़ दूंगी।"

दासी द्वार पर हरे मखमल का परदा उठाकर कमरे के भीतर चली गई। वहाँ पर भीतर की आवाज़ साफ-साफ सुनाई दे रही थी। अमीना चौकी पर बैठी-बैठी भीतर के शब्दों से अपने मन में सारा चित्र बनाने लगी।

एक आवाज़ आई—"यह पीकदान साफ कर ले आओ।"

अमीना ने कल्पना की, कोई सुलतान के घाव को चूसकर पीकदान में थूक रहा है और जान पड़ता है, वह भर गया। इसी से उसे साफ कराने की ज़रूरत आ पड़ी।

फिर बड़े शोक-संतप्त स्वर में सुनाई दिया—"रज़िया, बेटी तू रहने दे।"

अमीना समझ गई कि रज़िया ज़हरीला रक्त चूस रही है और उसकी माँ उसे हटाकर वहाँ अपनी नियुक्ति चाहती है।

अचानक सुलतान का कर्कश स्वर सुनाई दिया—"नहीं, ख़ुदा तक पहुँचने की सिर्फ एक ही राह है और उसकी किसी शकल का सहारा नहीं लिया जायगा। घन और हथौड़े चलाकर इस पत्थर पर से मूर्ति की पहचान मिटा दो। तुर्किस्तान से इन विधर्मियों की बुद्धि ठीक करने आये हैं हम।'

फिर उसकी पुकार मंद्र सप्तक में विलीन होकर सुप्त हो गई। फिर चिल्ला उठा वह–"इन विधर्मियों की पीठों पर लाद दो ये पत्थर। ये दिल्ली पहुँचाए जावेंगे। इसलिए नहीं कि वहाँ पत्थरों का अभाव है। ये वहाँ दालानों की सीढ़ियों पर चिन दिये जावेंगे कि हमारे धार्मिकों के पैर पड़कर इनका कुफ़्र घिस जाय।......क़ाफ़िरों, ठीक़-ठीक चलते क्यों नहीं? तुम्हारा पाप क्यों तुम्हें भारी लग रहा है? सिपाहियों, इनकी नंगी टाँगों में कोड़े बरसाओ।"

फिर एकाएक बड़ी टीस भरी आवाज़ आई–"हट जा, यह कौन मेरा ख़ून चूस रहा है?"

फिर उसकी माँ बोली–"ठहर जा रज़िया।"

ऐसा जान पड़ा, रज़िया हट गई अब। फिर सुलतान बोला–"अरे मेरे भाइयों, मेरे द्वेष से जलकर तुमने मुझे ग़ुलामों के बाज़ार में बेच दिया, पर क्या मेरी तक़दीर पलट गई? अब मैं तुम्हें लोहे के मज़बूत पिंजरों में कैद कर खाने को दिन में सिर्फ एक ही निवाला दूंगा। और घुल-घुलकर तुम्हारा मरना देखूंगा।"

हकीम साहब की आवाज़ आई पर अमीना बाहर बैठी-बैठी कुछ नहीं समझ सकी। वह कह रहे थे–"सुलतान को बड़ा चैन जान पड़ता है। आँखें लग गई हैं इनकी। अगर इसी तरह इन्हें नींद आ गई तो घाव के जल्दी ही पूरा हो जाने में बड़ी मदद मिलेगी।"

वह घाव की मरहम-पट्टी कर चुके थे।

दासी ने अब अवसर पाकर रानी हमीदा से कहा–"शाह तुर्कान का संदेशा लेकर एक लौंड़ी आई है। वह सुलतान का ख़ून चूसने के लिए खुद भी आना चाहती है।"

रानी ने कहा–"क़स्रे सफ़ेद के राजभवन से हमें निकालकर जब से वह वहाँ रहने लगी हैं, तभी से हमारा ख़ून चूस रही हैं। और जब से सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर अपने लड़के को युवराज बनाना चाहती हैं, क्या तभी से वह सुलतान का भी ख़ून नहीं चूस रही हैं? तुमने क्या जवाब दिया?"

"आपसे पूछकर ही तो।"

"नहीं, उसे मत आने दो। उस वेश्या ने अनेक लोगों की हत्या कराई है। वह सुलतान की सेवा के बहाने हमारे उपयोग की चीज़ों में कहीं विष मिलाकर न चली जाय।"

एक तुर्क सरदार जो इल्तुतमिश का बड़ा हितचिंतक बनकर आया था, वास्तव में शाह तुर्कान के उपकारों से विनीत था। हमीदा के इन शब्दों को सहन नहीं कर सका, बोला–"रानीजी, आपको अपने शब्द नाप-तोलकर ही मुँह से निकालने उचित हैं।"

रज़िया का पालन-पोषण मर्दों की तरह ही हुआ था। उसे तलवार चलाना ही नहीं, किसी को मुँहतोड़ शब्दों में उत्तर देना भी आता था। उसने माता की मदद की–"सरदार को क्रोध नहीं आना चाहिए। जो जैसा होगा, उसके लिए वैसे ही शब्द काम में लाए जावेंगे।"

एक लड़की के मुँह से अपनी वाणी की अवज्ञा वह तुर्क सरदार सहन नहीं कर सका। उसका चेहरा तमतमा उठा, आँखों में रक्त भर आया। बोला–

"राजकुमारी, तुम्हें देहली के राज-सिंहासन में बैठने का शौक़ तो हुआ है। पर याद रक्खो, वह फूलों की सेज नहीं है।"

'हाँ-हाँ, वह मेरा शौक़ ही नहीं, सुलतान की इच्छा और भगवान् का आदेश है।"

"यह कुफ़्र है शरियत के बिल्कुल खिलाफ। नारी को संतान पैदा करने के सिवा और क्या आता है?"

अब प्रधान मंत्री को कहना पड़ा––"जब सभी उत्तराधिकारी अयोग्य हो जाँय तो नारी को ही राजदंड संभालना पड़ेगा।"

"यह सब देख लिया जायगा।" क्रोध के आवेश में वह तुर्क सरदार जाने लगा।

एक दूसरे अमीर ने उसे रोककर कहा–"सुलतान बीमार हैं, उनके निकट आपको अपने क्रोध का प्रदर्शन करना उचित नहीं है। उनको अच्छा हो

जाने दीजिए फिर जैसी पंचों की राय होगी, वही किया जायगा।"

"तुम्हारे पंचों की राय हमें मालूम है। हम चालीस सरदार हैं। वे सभी रुक्नुद्दीन के पक्ष में हैं। वह क्या बुरा है? दीन-दुखियों की मुसीबतें दूर करनेवाला, दान देने में दूसरा हातिम है।'

दासी हमीदा की मदद को आकर बोली—"शराब के नशे में मदहोश होकर हाथी में चढ़ा बाज़ार में अशर्फियाँ लुटाना दान और उदारता नहीं है, वह पागलपन है। उससे क्या ग़रीब प्रजा का हृदय जीता जा सकता है। दिन-रात शराब में डूबा हुआ सिर क्या राजमुकुट सँभालने योग्य है?"

वह तुर्की सरदार जाते-जाते फिर लौटकर आता है और मुट्ठी बाँधकर बोला—"मैं तुम्हें फिर सावधान करता हूँ। दिल्ली के सिंहासन पर अगर तुमने नारी को बिठा दिया, तो ठीक न होगा। हम चालीस-के-चालीस तुर्क सरदार मिलकर मँझधार में तुम्हारा बेड़ा डुबा देंगे।"

और सब धीरे-धीरे बोल रहे थे कि बीमार सुलतान को पीड़ा न पहुंचे, पर वह तुर्की सरदार जान-बूझकर चिल्लाया। उसके जाते ही इल्तुतमिश की आँख खुल गयी। वह उतने ही दर्द-भरे स्वर में चिल्लाया—"नालायक़ बेटों से मेरी बेटी कई गुना अच्छी है। उसका विरोध करने वाला यह कौन है? मेरे सामने लाओ उसे।"

मंत्री मुहम्मद जुनैदी ने कहा—"नहीं सुलतान, ऐसा कोई नहीं है। बीमारी की दुर्बलता से ही आपको ऐसा सुन पड़ा।"

"नहीं मंत्री, मैं होश में हूँ। वह तुर्की सरदार अभी यहाँ से गया है। वह शाह तुर्कान का जासूस बनकर ही यहाँ आया था। मंत्री महोदय, लेखक को बुलाओ अभी। कल को न-जाने फिर क्या हो जाय। मैं अभी इस बात का फैसला कर देना चाहता हूँ। राजाज्ञा लिखे जाने का प्रबंध करो अभी।"

दूसरे दिन सुलतान कुछ ठीक जान पड़े। रात बड़ी बेचैनी से उन्होंने काटी। राज्य के सभी हितचिंतक मंत्री और सरदार फिर जमा हो गये।

सुलतान ने पुकारा—"रज़िया ! रज़िया कहाँ है ?"

रज़िया धीरे-धीरे पिता के सिरहाने से जाकर खड़ी हो गई। बड़ी विनम्रता से बोली—"मैं उपस्थित हूँ। आपका स्वास्थ्य कैसा है ?"

"आज तो ठीक ही है, कल की मैं नहीं जानता। इसीलिए तो सबको यहाँ दरबार में बुलाया है।"

रज़िया ने चिंतित होकर हकीम साहब की ओर देखा।

हकीम साहब धीरे-धीरे बोले—"चिंता की कोई बात नहीं है।"

इल्तुतमिश ने सुन लिया—"चिंता की बात है कैसे नहीं ? कल तुर्की सरदार रुष्ट होकर चला गया। उसने उन चालीसों सरदारों के बीच में बगावत बो दी होगी।"

सभी जो वहाँ उपस्थित थे, आश्चर्य से एक-दूसरे का मुख देखने लगे, और संकेतों में अपनी भावनायें प्रकट करने लगे।

इल्तुतमिश ने उनके कौतूहल को समझ लिया, बोला—"क्यों, तुम मुझे बेहोशी में बकता हुआ समझ रहे हो ? समय के घेरे को तोड़कर मैं बहुत दूर तक देख रहा हूँ। मेरी धन-संपत्ति और मान-सम्मान में ही उसने मेरे राज्य के अनेक अमीर-उमरावों को खरीद लिया है। मैं नहीं चाहता, राज्य के हित-चिंतक भी नहीं चाहते कि उसकी इच्छा पूरी हो। रुक्नुद्दीन बेटा मेरा भी है, पर उस औरत ने बचपन ही से उसकी शिक्षा-दीक्षा ठीक नहीं होने दी, वह कुसंगति में पड़ गया।" कुछ देर के लिए वह कुछ सोचने लगा या थक गया।

प्रधान मंत्री ने कहा—"जहाँपनाह, आप कोई चिन्ता न करें। आप सुलतान हैं। आपने अपनी भुजाओं के बल से ही इस राज्य की स्थापना की है। आप जिसे चाहेंगे, इसका उत्तराधिकारी बनाने में समर्थ हैं।"

इल्तुतमिश फिर कहने लगा—"चारों ओर प्रांतों में विद्रोह और उपद्रवों को दबाने के लिए मुझे वर्ष के अधिक महीने बाहर ही बिताने पड़े। मुझे बराबर यही डर रहा, बाहर के बलवों को दबाने में मेरे घर के भीतर ही षड्यंत्र उपज जावेंगे। वे उपज ही गये। अब वे कैसे समाप्त हों?"

रज़िया बोली—"वे हो जावेंगे। हमारे पास सशस्त्र सेना है। आपको कोई चिंता न होनी चाहिए। अधिक बोलने से आपका कष्ट बढ़ता जा रहा है।"

हकीम साहब ने भी राजकुमारी की हाँ-में-हाँ मिलाई।

"अगर मैं मर गया, तो फिर क्या होगा? इसलिए मुझे बोलने दो कि मेरी इच्छा मेरे ही साथ न चली जाय। बड़े कठिन श्रम से मैंने दास-वंश के इस साम्राज्य को एक-एक ईंट जोड़कर बनाया। मेरी मृत्यु के साथ ही यदि इसका भी अंत हो गया, तो मैं अपनी समाधि में सुख से न सो सकूँगा। मैंने अपने स्वामी ऐबक से इस राज्य का उत्तराधिकार सँभालते समय यह प्रतिज्ञा की थी कि दास-वंश के गौरव को अक्षुण्ण ही रक्खूँगा।" सुलतान ने एक कठिनाई की साँस ली।

मुहम्मद जुनैदी उसके प्रधान मंत्री ने साहस बढ़ाया—"सुलतान ऐबक ने अपने और अपने गुरु की स्मृति में जो मीनार बनवाई, उसकी अकेली मंज़िल के ऊपर आपने तीन मंजिलें और जोड़कर उनका नाम चमकाया है। पहली मंजिल बना देनी जितनी सरल थी, उतनी क्या दूसरी थी? तीसरी और चौथी का तो कहना ही क्या है। सुलतान ऐबक ने जिस मसजिद को बनाया था, लोगों की बढ़ती हुई भीड़ के लिए उसका विस्तार कर आपने अपना यश बढ़ाया। अन्त में इतने बड़े मुल्क को जीतकर आपने गुलामों के खानदान को शाही खानदान बना दिया।"

बीच ही में इल्तुतमिश बोल उठा—"लेकिन इस समय क्या मुझे अपनी झूठी प्रशंसा सुननी उचित है? मेरे और राज्य के सबसे बड़े मतलब की बात पर आओ। मेरी मृत्यु के बाद……"

मंत्री बोला—"आप सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहें।"

"शब्दों से क्या किसी की आयु बढ़ सकती है ? मरना तो है ही, आज न सही, कल को निश्चित रूप से। इसलिए इस प्रश्न पर विचार करो, यदि मेरे अयोग्य भेटों में से कोई सिंहासन पर बैठ गया, तो दास-वंश की शीघ्र ही समाप्ति समझो। रज़िया—मेरी संतानों में से केवल रज़िया ही ऐसी है, जिसकी समझ-बूझ, शील-स्वभाव, बल-बुद्धि में मुझे पूरा भरोसा है। रज़िया !"

रज़िया सुलतान से अधिक निकट हो गई—"जी सुलतान।"

"तुझे स्वीकार है ?"

"अपने किसी स्वार्थ और अहंकार की तृप्ति के लिए नहीं, केवल-मात्र प्रजा की सुख-समृद्धि के लिए ही आपकी यह इच्छा पूर्ण हो।"

"मेरी नहीं, भगवान् की इच्छा! इस जीते हुए देश की प्रजा को सच्चा मार्ग प्राप्त हो, हर प्रकार से उसकी उन्नति हो। आपस का कलह दूर हो। सबमें प्रेम बढ़े, भाईचारा बढ़े। सरलता ! सरलता ! सरलता ! सच्चाई ! सच्चाई ! सच्चाई ! सरलता ही सच्चाई है। सबको सच्चे श्रम का सुख मिले। भोग-विलास केवल भगवान् ही के लिए।" सुलतान बड़बड़ाता हुआ कुछ देर चुप रहकर फिर बोला—"रज़िया, तूने सुनी मेरी बातें ?"

"हाँ, सुनीं।"

"तू इन पर चल सकेगी ?"

"चलूंगी। भगवान् की सहायता मिले, आपका आशीर्वाद।"

"अच्छी बात है। मेरे मित्रों, सरदारों और मंत्रियों, तुम जो भी यहाँ पर उपस्थित हो, यदि तुम में से किसी को भी मेरा निर्णय पसंद नहीं है, तो तुम अभी जाकर हमारे विरोधियों की भीड़ बढ़ा सकते हो।"

सब एक स्वर से बोले—"हम सब आपके साथ है।"

"एक-एक कर मेरे हाथ में अपने हाथ देकर इस बात की साक्षी दो।" सभी ने एक-एक कर वैसा ही किया।

"अच्छी बात है। अब सबसे बड़ी परीक्षा शेष है। मेरा रजमुकुट कहाँ है ?"

एक दासी ने राजमुकुट लाकर सुलतान के सिरहाने रख दिया।

इल्तुतमिश ने पड़े-ही-पड़े उसे उठा लिया और कहा—"रज़िया, यह तुम्हारे लिए है, लेकिन साम्राज्य का यह भारी भार तुम्हारे सिर पर रखने से पहले मैं तुमसे एक प्रतिज्ञा कराना चाहता हूँ। अगर उसे पूरा करने की सामर्थ्य नहीं रखती हो, तो झूठ बोलने से कोई लाभ न होगा।"

"झूठ न बोलूँगी।"

"तुम्हें विवाह करना नहीं है, आजन्म कुमारी ही रहना होगा।"

सारे कमरे में एक गंभीर निस्तब्धता छा गई। सब एक-दूसरे की तरफ देखकर मन-ही-मन कहने लगे—"सुलतान की यह बड़ी विचित्र समझ है।"

कुछ सोचने लगे—"यह आयु की प्रचंड ज्वाला कब तक नँगे हाथों में ली जा सकेगी ?"

सबकी दृष्टि रज़िया की ओर थी। वे उसका उत्तर सुनने को व्यग्र थे।

रज़िया ने ऊँचे और स्पष्ट स्वर से उत्तर दिया—'पिताजी, आपकी इच्छा पूर्ण हो।"

"शावाश ! बेटी, यही आशा थी तुमसे। फिर एक बार इन शब्दों में अपनी भावना को समर्थन दो कि तुस आजन्म विवाह नहीं करोगी।"

रज़िया ने फिर कहा—"नहीं पिताजी, मैं आजन्म विवाह नहीं करूँगी।"

सुलतान बोला—'हाँ, मैंने सुन लिया। आप लोग जो सब यहाँ पर उपस्थित हो, तुमने भी सुना ?"

"जी सरकार !" सबने एक स्वर में कहा।

लेकिन हबशी जमालुद्दीन याकूत, रज़िया को घुड़सवारी सिखाता था। उन दोनों की आपसी पहचान बहुत दिनों की होने से गहरी हो गई थी। वह रज़िया को चाहता था। उसने उन लोगों के स्वर में सहयोग नहीं दिया।

"ज्वालामुखी के ऊपर मैंने रजिया का राजसिंहासन रख दिया। आप लोग सब इसकी सहायता करें।"

"अवश्य !" सभी ने उत्तर दिया।

"तब निश्चय ही दास-वंश बहुत पीढ़ियों तक चलता रहेगा।"

एक संशयवादी बोला—"लेकिन जहाँपनाह, अशिष्टता के लिये क्षमा चाहता हूँ ।"

सुलतान ने कहा—'ठहर जाओ अभी । लो, बेटी ! इस राजमुकुट को धारण करो । तुम्हारा बल-प्रयास, शिक्षा और बुद्धि इसे सम्मानित ही रख सकेंगे । मेरा यही आशीर्वाद है ।"

थोड़ा-सा उठकर सुलतान ने रज़िया के सिर पर राजमुकुट रख दिया । उसने फिर तकिये पर सिर रखते हुए उस संशयवादी को संबोधित किया—"कहो, क्या कहना है तुम्हें ?" सुलतान के पेट में पीड़ा प्रकटी, पर उसने उसे दबाकर भी उसकी बात सुनने की आकुलता दिखाई ।

उसने सुलतान की दशा समझ ली, वह चुप ही रह गया । कौन था वह ?

सुलतान ने आग्रह-पूर्वक कहा—"अब तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा ।"

उसे कहना पड़ा—"आपने एक बात कहकर दूसरे वाक्य से उसकी जड़ ही काट दी । जब रज़िया बेगम आजन्म कुमारी ही रहेंगी, तो दास-वंश बहुत पीढ़ियों तक कैसे चलता रहेगा ?"

"इस मूर्ख को निकालो यहाँ से । यह भी क्यों नहीं उन्हीं विद्रोहियों की संख्या बढ़ाता, जो मेरे नालायक़ बेटे का साथ दे रहे हैं ।"

उसने बड़ी विनती से उत्तर दिया—"नहीं सुलतान, में आपके सच्चे सेवकों में से हूँ । राज्य की भलाई सोचने और करने में ही मेरी आयु बीती है । आप अकारण मुझ पर क्यों रुष्ट हो गए ?" वह संशयवादी हबशी याक़ूत था ।

"अच्छा, तो सुन ले । मैं तेरा संशय दूर कर देता हूँ । सुलतान ऐबक क्या मुहम्मद गौरी का पुत्र था ? और नहीं सुलतान ऐबक का यह इल्तुतमिश, जो तेरे सामने मृत्यु-शय्या पर पड़ा बोल रहा है—यह भी उसका बेटा नहीं ।"

सुलतान के तर्क से नहीं, असकी मृत्यु-शय्या के शब्द से उस कक्ष में गंभीर वातावरण फैल गया । सभी लोग, जो अभी तक सुलतान के नीरोग हो जाने की आशा में थे, गहरी आशंका में डूब गये ।

"रज़िया बेटी, हज़रत कुतुबुद्दीन साहब की मज़ार पूरी नहीं करा सका, उसका ध्यान रखना है।"

"सबसे पहले।" बड़ी विनम्रता और दृढ़ता से रज़िया ने उत्तर दिया।

सुलतान का कंठ-स्वर अब क्षीण पड़ गया। उसने विश्रांत होकर कहा--"भगवान् को पाने की सच्ची लगन यदि हमारे भीतर है, तो क्या रास्ते सभी एक ही नहीं हैं? उज्जैन के मंदिर की जो मूर्तियाँ मैंने मसजिद की सीढ़ियों में चुनवा दी हैं अब सोच रहा हूँ, ऐसा क्यों किया गया? नाम और रूप में क्या अन्तर है? जब किसी ने भगवान् को देखा ही नहीं है तो उसका नाम बतानेवाला कौन है?"

कोई भी नहीं समझा, सुलतान क्या कह रहा है? फिर उसने कुछ भी नहीं कहा। उसे एक हिचकी आई और फिर वह ऐसा सोया कि फिर नहीं उठा। भारत में मुसलिम साम्राज्य का वह सबसे पहला शक्तिशाली सम्राट्!

●

७

मरते-मरते सुलतान इल्तुतमिश अपने राज्य की उत्तराधिकारिणी राजकुमारी रज़िया को बना गया, यह उसकी दूरदर्शिता ही थी। लेकिन महारानी शाह तुर्कान ने राजधानी के अनेक सामंतों और धर्माध्यक्षों को अपने पक्ष में कर लिया। वे एक स्वर में बोल उठे--"यह सरासर धर्म के विरुद्ध है, नारी को राजसिंहासन पर बैठने की आज्ञा नहीं है।'

सुलतान के मरते ही शाह तुर्कान के बड़े बेटे रुक्नुद्दीन को राजसिंहासन पर बिठा दिया गया। सुलताना रज़िया का पक्ष दुर्बल पड़ गया, केवल नारी का जन्म होने के कारण ही। समझ-बूझ, शक्ति-साहस, दया-दाक्षिण्य, नीति-कौशल किसी की भी कमी नहीं थी। कमी केवल जन्म की! भाग्य की!

उधर शाह तुर्कान बड़ी कूट, क्रूर और प्रतिहिंसा-भरी नारी थी। बेटे

को राजसिंहासन में बैठाकर वह हर संभव उपायों से उसकी जड़ मज़बूत करने लगी ।

रुक्नुद्दीन बड़ा विलासी था । दिन-रात शराब के नशे में चूर रहता और विषय-भोग में डूबा हुआ । कभी-कभी निर्धन प्रजा में झूठा यश कमाने के लिए नशे में धुत्त, हाथी पर सवार दिल्ली की सड़कों पर अशर्फियाँ लुटाता ।

अब राजमाता शाह तुर्कान पग-पग पर राज-काज में हस्तक्षेप करने लगी। बात-बात में अपनी ही मनमानी करती रही । राज्य की चली आती हुई परम्पराओं को तोड़कर अपना विधान चलाने लगी, जिन सरदार और सामंतों ने उसके बेटे को सिंहासन पर बिठाने में सहायता दी थी, उनकी भी उपेक्षा करने लगी । उसका यह अनुचित हस्तक्षेप राज्य के अधिकारियों को खटकने लगा । वे आपस में मंत्रणा कर बोले "भाई, हमने रज़िया को राजसिंहासन पर बैठने नहीं दिया,पर यह तो फिर औरत का ही राज्य हो गया । अब क्या किया जाय ?"

बहुतों ने एकमत होकर कहा—"हम राज्य के सभी प्रांतों में इसके विरुद्ध प्रचार कर विद्रोह फैला देंगे और जब इसका शराबी बेटा उन प्रांतों के विद्रोह को दबाने जायगा तो हम अवसर पाकर किसी योग्य अधिकारी को दिल्ली के सिंहासन पर बिठा देंगे।"

यही कुछ किया गया । शेष शाह तुर्कान की अदूरदर्शिता और निर्बुद्धि से विद्रोह अपने आप प्रचारित हो गया । राजधानी में उसे दुर्बल पाकर प्रांतों में सभी स्वतंत्र हो जाने के लिए तैयार हो गये ।

सबसे पहले अवध का सूबेदार विद्रोही हो उठा । उसे नये सुलतान की अयोग्यता की साक्षी मिल गई । उसने रुक्नुद्दीन की राजाज्ञाओं को मानने से साफ इनकार कर दिया । यही नहीं, बल्कि उसने लखनौती से दिल्ली के लिए जो बैलगाड़ियों में राजकोष जा रहा था, उसे लूट लिया ।

इसी तरह बदायूँ का शासक भी स्वतंत्र हो गया । उसने दिल्ली को राजस्व और सिपाही भेजने बंद कर दिए । राजधानी से उसे कड़ा दंड देने की जो धमकी आई, उसने उसकी ज़रा भी परवा नहीं की ।

मुलतान, हाँसी और लाहौर के शासकों ने भी दिल्ली के विरुद्ध आपस में गठबंधन कर लिया और रुक्नुद्दीन को पदच्युत करने की ठान ली। दिल्ली का मुख्य मंत्री मुहम्मद जुनैदी भी शाह तुर्कान के शासन से तंग आ गया और दिल्ली के भीतरी और बाहरी विद्रोहियों से मेल-जोल बढ़ाने लगा।

अब महारानी शाह तुर्कान के मोह का सपना टूटा, उसे होश आया कि प्रजा के साथ मनमानी का कोई मूल्य नहीं, अपने स्वार्थ में कोई शक्ति नहीं। राज्य का विद्रोह धमकियों, टेढ़ी भौंहों और तीखी तलवारों से नहीं दबाया जा सकता। राज्य के कोषों में जो कुछ संपत्ति थी, वह नये सुलतान द्वारा शराब के नृत्य-उत्सवों, विराट् भोजों तथा अशर्फियों की लूट में समाप्त हो गई। सेना का वेतन समय पर नहीं दिया गया और उसका अधिकांश विद्रोहियों में मिल गया।

अंत में जिस तरह से भी हो, धन-जन एकत्र कर वह मद्यपी सुलतान रुक्नुद्दीन प्रांतों के विद्रोह को दबाने के लिए चला गया। उसकी माता ने राजधानी की शांति और वहाँ अपना प्रभुत्व बनाये रखने का भार अपने ऊपर लिया।

इधर रज़िया की माता रानी हमीदा ने देखा कि रुक्नुद्दीन के विरुद्ध बहुत से सरदार उठ खड़े हुए हैं तो उसे अवसर मिला,उसने अनेक अधिकारियों से मंत्रणा कर अपने छोटे राजकुमार कुतुबुद्दीन को राजसिंहासन पर बिठा देने का निश्चय किया।

पर राजकुमार कुतुबुद्दीन का कहीं पता ही नहीं चला। पिता की मृत्यु और माता का महल खो जाने के कारण राजकुमार आश्रय और अभिभावक-हीन हो गया। निरुद्देश्य होकर जहाँ इच्छा होती, जाता, जो मन में आता, करता। कुश्के फीरोज़ी महल में पूछने पर रानी हमीदा ने कहा—"हम अनाथों की देख-रेख करनेवाला अब है कौन ? मैं कहाँ तक किस-किस की देख-रेख करूँ ? आज प्रातःकाल ही शिकार के लिए जाता हूँ, कह गया था। मैं नहीं जानती, फिर कहाँ गया ? उसके साथियों से पूछो।"

उसके साथियों से पूछा गया तो किसी ने कहा—"नाव में चढ़कर शमशी तालाब में मछली मारने गया।" कोई बोला—"जमना-पार हिरन के शिकार को।" किसके साथ गया है, किस दिशा की ओर? इसका कुछ पता नहीं चला। उसकी बहुत कुछ खोज की गई, कोई फल नहीं निकला।

रानी हमीदा उदय होते हुए इस सौभाग्य की भर्त्सना से कुंठित हो उठी। और जब कई दिन तक भी राजकुमार कुतुबुद्दीन का कोई पता न चला तो रानी शोक से पागल हो उठी। उसने अनेक सरदारों और सुलतान के स्वामिभक्त सेनापतियों से राजकुमार की खोज कराने को कहा, पर वे अपने प्रयास में सफल नहीं हुए।

अन्त में यही समझ लिया गया कि शाह तुर्कान ने उसके बेटे के प्रतिद्वंद्वी राजकुमार को बंदी कर रखा है या उसकी हत्या करा दी है। निश्चय ही उस पापीयसी का कोई गुप्तचर उसे शिकार के बहाने से ले गया और जंगल में ले जाकर उसे मार डाला और वहीं कहीं गिद्धों और सियारों के भोजन के लिये छोड़ दिया।

अनुमान लगाया गया कि जो इस सत्य से अवगत हैं, उनका मुँह उस कमीनी रानी ने सोने की अशर्फियों से बंद कर दिया है या वे उसके रोष और दंड के भय से अपने ओठों पर ताला देकर चुप हैं।

फिर एक बार बात फैल गई कि राजकुमार हाथी पर चढ़कर शेर के शिकार को गया था, वहीं शेर का ग्रास हो गया। बाद को जब इस सत्य की खोजबीन की गई तो यह बात निराधार पाई गई। अन्त में यह समझ लिया गया कि यह अफ़वाह शाह तुर्कान के ही सहायकों ने फैलाई है।

रजिया के बदले जब शाह तुर्कान ने उसके भाई राजकुमार कुतुबुद्दीन को दिल्ली के सिंहासन की ओर बढ़ते देखा तो वह उसके प्राणों की भूखी हो उठी। एक दिन उसे अवसर मिल गया। उसकी दासी अमीना से राजकुमार का गुप्त प्रेम था। एक दिन जब वह उसकी टोह में श्वेत-भवन के बाहरी उपवन में एक मजदूर का वेश पहनकर घूम रहा था, तो शाह तुर्कान के एक

जासूस ने उसकी असली मंशा ताड़ ली। वह उसे अमीना के मिलन का धोखा देकर महल में ले गया और वहाँ एक नौकर के कमरे में उसे बंदी कर लिया गया।

अब शाह तुर्कान उसे मरवा देने का प्रपंच रचने लगी, पर सौभाग्य से राजकुमार कमरे की एक खिड़की पर चढ़ गया। उसने खिड़की खोल दी। वह भूमि पर से बहुत ऊँची थी। शाह तुर्कान के हाथों मरने से उसने वहाँ से नीचे कूदकर मर जाना ही उचित समझा। वह नीचे कूद पड़ा ! उसका सौभाग्य और दुर्भाग्य फिर आपस में लड़ने लगे। सौभाग्य से वह नीचे कूदकर बच गया, पर उसके दुर्भाग्य से महल के उसी गुप्तचर ने देख लिया। शाह तुर्कान की आज्ञा लेकर वह उसी बंदीगृह में राजकुमार की आँखें फोड़ने के लिए जा रहा था।

बंदी को खिड़की के मार्ग से कूदता हुआ देखकर गुप्तचर ने तुरन्त ही उसका पीछा किया। इनाम के लालच से वह भी उसके ऊपर कूद पड़ा। राजकुमार जंगल की ओर भागा। गुप्तचर ने भी उसका पीछा कर कुछ दूरी पर उसे पकड़ लिया।

राजकुमार बोला—"दया करो मेरे ऊपर।"

"नहीं, तुम्हारे ऊपर दया करनी नहीं है। तुम दिल्ली के राजसिंहासन पर अधिकार चाहते हो। शाह तुर्कान ने तुम्हारी हत्या कर लाने की मुझे आज्ञा दी है।"

"ऐसा न कहो। मैं अभी दिल्ली छोड़कर दूर किसी परदेस को चला जाऊँगा। मैं राजघराने की सारी माया और संबंधों को काट, भीख माँगता हुआ अपना जीवन बिता दूँगा, इसलिये मुझ पर दया करो।"

"अच्छा, दया तुम पर इतनी ही की जायगी, तुम्हें जान से नहीं मारा जायगा।" उसने जोर से उसका हाथ पकड़ लिया।

"तब मेरा हाथ छोड़ दो, मुझे जाने दो।"

"कि फिर तुम कुश्के फीरोज़ी की तरफ अपनी माता के आश्रय में चले

जाओ, जिन्हें कुछ अधिकार-लोलुप सरदारों ने दिल्ली के राजमुकुट की चमक दिखाई है।"

"नहीं,तुम जिस दिशा की ओर मेरा मुँह कर दोगे,उधर ही चला जऊँगा।"

"अच्छी बात है, तो मैं तुम्हारी सारी दिशाओं के भ्रम को मिटा देता हूँ।" कहते हुए उस नृशंस ने उसकी दोनों आँखों में ज़हर में बुझी सींक घोंप दी।

राजकुमार चीखता हुआ भूमि पर गिर पड़ा। रात और भी सघन हो उठी!

'ले, अब तू सच ही बोलेगा। तुझे ठीक भीख माँगने योग्य बना दिया गया। रोना और चिल्लाना बंद कर दे कि कहीं पहचान न लिया जाय। तेरे सिर की महारानी शाह तुर्कान ने अच्छी क़ीमत बोल रक्खी है। इसलिए चुप-चाप अपने सिर को बचाता हुआ राजधानी दिल्ली से कहीं दूर चला जा। सावधान, अगर तूने किसी पर भी अपना परिचय खोला तो वही तेरा दुश्मन हो जायगा।"

गुप्तचर राजकुमार के संसार में अँधेरा कर चला गया। आँखों की पीड़ा से अब वह चिल्लावे भी कैसे? अगर कोई उसे पकड़कर शाह तुर्कान के निकट ले गया तो फिर उसके प्राण बच न सकेंगे। मृत्यु को इतने सन्निकट देखकर उसने अपनी पीड़ा अपने ही भीतर विलीन कर ली, जैसे बालू पानी को सोख लेता है। वह टटोलता हुआ आगे को बढ़ा। उसे पता नहीं चला, किधर जा रहा है।

वह एक छोटा-सा गाँव था। अधिकतर वहाँ राज और मिस्तरियों की बस्ती थी। उस दिन उस गाँव के अधिकांश व्यक्ति जामा मसजिद के प्रांगण में बुला लिए गये थे। सुलतान रुक्नुद्दीन ने राजाज्ञा द्वारा केवल बूढ़े और बीमारों को छोड़कर सभी को वहाँ उपस्थित होने के लिए विवश किया था। रात के अंधकार के बढ़ जाने पर भी जब वे नहीं लौटे तो उनकी पत्नियों और माताओं की चिंता का बढ़ना स्वाभाविक ही था। उनमें से बहुत-सी औरतें जामा मसजिद की ओर चली गईं।

अपनी प्रेयसी अमीना से मिलने के लिए उसने जो मजदूर का वेश बनाया था, वह मनि क्या इस होनेवाली घटना की सहायिका नहीं हो गई। वह उसी राज-मिस्तरियों के गाँव की ओर बढ़ा जा रहा था। किसके मिलन की आशा लेकर वह चला था, दुर्भाग्य ने कहाँ पहुँचा दिया ?

अंधकार ने चारों दिशाओं में उसके लिए मार्ग बना दिए। मार्ग के काँटे और फूल दोनों उसके लिए एक-से हो गये। राजकुमार की पहचान ही अब उसकी एकमात्र दुश्मन थी। अन्धा-भिखारी किसी का प्रतिद्वन्द्वी नहीं।

वह टटोलता हुआ आगे को बढ़ता चला। मुहल्ला नीरव और निस्पंद था। गाँव के कुत्ते उस असहाय के सरकते हुए चरणों पर चौंके नहीं, जो जहाँ पर था, वहीं ऊँघते रह गया।

अचानक उसके पीछे से एक नारी-कंठ ने पुकारा—"अरे अन्धे, उधर कहाँ जा रहा है ?"

"जहाँ भी भाग्य ले जावेगा।"

"नाला है उधर, मरेगा क्या?"

"ठीक राह बता दो।"

"कहाँ जावेगा ?"

"मसजिद है कोई यहाँ।"

"जामा मसजिद है, पर बहुत दूर। आज सभी गाँववालों को वहाँ सुलतान ने बुलाया है, तू भी अगर वहाँ पहुँच जाय तो कुछ लाभ हो सकेगा तुझे भी।"

सुलतान का नाम सुनते ही उस अन्धे के प्राण काँप उठे–"नहीं, मैं यहीं किसी की दया पर रात काट लूँगा।"

जामा मसजिद में नमाज़ के अनंतर। रुक्नुद्दीन के प्रतिनिधि ने उपस्थित जन-समूह से कहा—"भाइयों, धर्म और ईमान के ऊपर भारी संकट आया है। सुलतान इल्तुतमिश धर्म के बड़े पक्के थे। शरियत के विरुद्ध उन्होंने न कभी कोई शब्द ही कहा, न कोई विपरीत चरण ही बढ़ाया। अपना मतलब हल

करने के लिए कुछ अधिकार-लोलुपों ने रजिया को सिंहासन पर बिठाना चाहा था। पर उनकी दाल नहीं गली तो उन्होंने जगह-जगह सूबों में बलवे मचा दिए हैं। सुलतान को दिल्ली से बाहर शांति रखने के लिए जाना पड़ा है। जो कुछ सेना यहाँ थी, उसे अपने साथ ले जाना ज़रूरी था। दिल्ली में भी कुछ बदमाशों ने गड़बड़ मचाई है। अगर दिल्ली को नहीं बचाया गया तो फिर ग़रीब लोगों के जान-माल, सुख-चैन, धर्म-ईमान सभी पर संकट आ पड़ेगा। इस समय राज-मजदूरों के सभी काम बंद करने पड़े हैं। अगर ज्यादा गड़बड़ फैल गई तो बनिज-व्यापार, खेती-पाती के काम भी रुक जावेंगे। आप लोगों को यहाँ अब इसलिए बुलाया गया है कि तलवार हाथ में लेकर राजधानी की रक्षा करें। जाकर अपने बाल-बच्चों को धीरज बँधा आइये। कोतवाली में अपने-अपने नाम लिखा लें। फिर ढाल-तलवार बाँधकर शमशी तालाब के किनारे जमा हो जाइये। आज ही कूच होगा। चाहे यह करते-धरते आधी रात ही क्यों न हो जाय।"

एक व्यक्ति, जो उन लोगों में सबसे अधिक दूरदर्शी था, बोला—"हमारे बाल-बच्चों का क्या होगा?"

"राज्य की ओर से उनके लालन-पालन का प्रबंध है।"

"यदि विद्रोह व्यापक हो गया तो उनकी रक्षा कैसे होगी?"

"वे सब दुर्ग के भीतर ले लिये जावेंगे। भरती होते समय सबको एक-एक पुरजा दिया जायगा, उसमें उनके कुटुंबियों के नाम और उम्र लिखी होगी। क़िलेदार उसके अनुसार उनकी रक्षा का भार ग्रहण करेगा।"

कुछ लोग, जिनके दिल में लड़ने का चाव था, उमंग में भरकर चले गये, शेष सोचने लगे—"अगर क़िले के बाहर ही रह गये और बलवा फैल गया तो फिर क्या होगा?" वे भी विवश होकर लड़ाई के ही मैदान को शरण बनाने के लिए तैयार हो गये। शाम होकर अंधकार बढ़ चला था।

सौसन का पति भी जामा मसजिद की सभा में गया था। वहाँ से सभी लौट आये, थे सिर्फ वही नहीं। सौसन बड़ी देर तक पति की प्रतीक्षा करती

रही । जब नहीं आया तो पड़ोस में किसी के घर जाकर, पूछताछ करने लगी । चिंता में भरी घर का द्वार बंद करने की भी उसे सुध न रही ।

इसी बीच वह अंधा राजकुमार सौसन के घर की दीवार से जा लगा । दरवाज़ा टटोलकर घर के भीतर हो रहा । उसकी राहरोकने वाला वहाँ कोई भी न था । थोड़ी देर पर उसका पैर एक खटिया के पैर से जा लगा और वह चुपचाप उसके नीचे छिप गया ।

उसका नाम रमजानी था । उसकी पत्नी पड़ौसिन के पास मुँह लटकाकर खड़ी हो गई । पडोसिन बोली—"क्यों री सौसन, तेरा आदमी भी क्या जामा मसजिद की सभा में गया था ?"

"नहीं, गए तो थे वे कस्र-सफ़ेद में । महारानी शाह तुर्कान के महल में कुछ मरम्मत करने । वहाँ से छुट्टी मिल जाने पर सभा में भी गये ही होंगे ।"

"अब तो वहाँ से सभी लोग वापस आ गए । ये तो सब-के-सब सिपाहियों में भरती होने को तैयार हो गए, मानो कोई मेला देखने जा रहे हों । अगर वह भी कहीं भरती हो गए तो तू क्या करेगी ? तेरे विवाह को तो अभी एक महीना भी पूरा नहीं हुआ ।"

सौसन इस दुविधा में पड़ी थी कि क्या उत्तर दे । तभी उसे रमजानी आता दिखाई दिया । वह तुरन्त ही उसके पास दौड़ गई । दोनों झोपड़ी की ओर बढ़े ।

सौसन व्यग्र होकर बोली—"सबसे देर में क्यों आए तुम ? मुझे अकेले यहाँ डर क्यों नहीं लगता ? इसी से घर छोड़ आयी हूँ ।"

रमजानी ने जवाब में कहा—"मैं महारानी शाह तुर्कान के महल में गया था तुम्हें बताकर ही तो ।"

"सिपाहियों में भरती होने का क्या तय किया ?"

"तुम्हें छोड़कर क्यों कहीं जाऊँगा ?" रमजानी ने बड़ी भावुकता से उसका कंधा पकड़कर कहा ।

'फिर खावेंगे क्या ? राज-मिस्तरियों के काम तो सभी बंद हो जाने को हैं ।" वे दोनों अपने घर के भीतर आ गए थे ।

"भगवान् मालिक हैं। तूने तो दिया भी नहीं जला रक्खा है। ऐसी कंजूसी भी किस काम की ? अरी दिल को चौड़ा कर, हिम्मत बढ़ा। देनेवाला भगवान् है।"

"क्या सचमुच में तुम पलटन में सिपाही नहीं बनोगे ? सुनती हूँ, सुलतान के सिपाही तुम्हें जबर्दस्ती पकड़ ले जावेंगे बाँधकर।"

"अरी मैं बहुत बड़ा काम करने जा रहा हूँ। महारानीजी का एक खास काम।"

"उनके महल में कुछ मरम्मत का काम था। वही सबसे बड़ा काम हो गया क्या ?"

"पगली कहीं की !" रमजानी नें उसकी गाल में एक हलकी-सी चपत लगाकर कहा—"अरी मरम्मत का तो एक बहाना था।"

"तो क्या तुम्हें कोई मंत्री-पद मिलेगा ?"

"महारानी ने मुझे एक ख़ास काम सौंपा है। अगर वह मैं कर सका, तो हमारी तक़दीर चमक उठेगी।"

"हर रोज़ ऐसी ही बातें बनाते हो। क्या करने को कहा है ?"

"बड़ी गुप्त बात है।"

"कुछ भी नहीं है। सिर्फ एक झूठ छिपाने की बात।"

"तेरी क़सम।" उसने सौसन के कंधे पर हाथ रखकर कहा।

"हटो भी, जाओ।" सौसन ने पति का हाथ अपने कंधे पर से हटाकर कहा।

रमजानी कुछ सोच में पड़ गया। सौसन बड़ी ज़ोर से हँस पड़ी, पति उपेक्षित-सा रह गया। वह भीतर से बाहर चला गया। इधर-उधर देख आया। सौसन पड़ौस में जाकर अपने घर का दिया जला लाई।

रमजानी बोला—"देख किसी से कहने की बात नहीं है। अगर इसका एक लफ्ज़ भी कहीं बाहर चला गया तो हम दोनों के सिर काट डाले जावेंगे।"

सौसन घबरा उठी, उसने उसके हाथ पकड़ मुंह हथेली से बंद करते हुए कहा—"नहीं-नहीं, ऐसा भयानक काम हमें कुछ नहीं करना है।"

"बिना भय में पैर दिए क्या संसार में कोई चीज हाथ लगती है ?"

"मुझे बड़ा डर लग रहा है। जल्दी से कहो तुम क्या करना चाहते हो ?"

रमजानी धीरे-धीरे कहने लगा—"रज़िया के बाद उसकी माता अपने बेटे कुतुबुद्दीन को राजसिंहासन पर, बिठाना चाहती है सुलतान रुक्नुद्दीन को हटा-कर। महारानी शाह तुर्कान क्यों इसे सहन कर लें ? उसने मुझे एक थैली अशर्फियों की भरी दिखाई है।"

"किसलिए ?"

चारपाई के नीचे छिपा हुआ कुतुबुद्दीन चौंक पड़ा। वह बड़े ध्यान से सुनने लगा।

"एक मूर्ख उसे नहीं मार सका। वह थैली मेरे भाग्य में लिखी हुई है सौसन, गँडासा कहाँ है ?"

"किसलिए ? किसलिए ?" बहुत अधीर होकर सौसन ने पूछा।

"राजकुमार कुतुबुद्दीन के सिर के लिए।"

कुतुबुद्दीन ने कंधों पर अपने सिर को टटोला।

"नहीं, नहीं !" सौसन ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए—"भगवान् का भय करो। हम एक निरीह-निरपराध के रक्त में सनी अशर्फियों से क्या करेंगे ?"

"निरपराध किस बात का ? जो विद्रोही हमारे सुलतान का सिंहासन छीनने को तैयार है, उनका सामना करने को क्या मेरे सभी भाई तलवार बाँधकर शमशी तालाब पर एकत्र नहीं हुए हैं ? वे सैकड़ों सिर को उतारकर धरती पर लुढ़का देंगे। तुम मुझे एक का सिर भी नहीं उतारने दोगी क्या ? इतनी डरपोक !"

"नहीं–नहीं ! किसी तरह भी नहीं।"

"तो तुम्हारी राय अगर एक को मारने की नहीं है तो मैं भी लड़ाई के मैदान में चला जाता हूँ बहुतों का सिर धड़ से अलग करने।"

"मैं यहाँ किसके सहारे रहूँगी ?"

"तुम्हें क़िले में भरती करा जाऊंगा। वहाँ सभी की औरतें रहेंगी। लेकिन एक बात याद रखो, लड़ाई में दसों का सिर काटने के लिए मुझे बीसों से अपनी गर्दन बचानी पड़ेगी। फिर इस बात का ही क्या भरोसा, मैं जीता-जागता तुम्हारे पास लौट आऊँगा। अगर लौट भी आया तो क्या जिस तरह जा रहा हूँ, ऐसे ही आ जाऊँगा ? तैयार हो तुम अपने हाथ-पैर, आँख-कान गँवाए अपाहिज पति के शेष जीवन का भार ढोने के लिए ?"

सौसन सिर से पैर तक काँप उठी और काँप रहा था चारपाई के नीचे वह अन्धा राजकुमार अपने काले भविष्य की कल्पना कर। सोचने लगा— "किस तरह भाग्य ने पलटा खाया ? जहाँ शरण समझकर आया था, वहाँ मुझसे पहले ही मेरा मरण आ पहुँचा। वही घातक मुझे मार डालने से क्यों डर गया ? यदि मेरी आँखें होतीं, तो मैं अब भी अपने प्राण बचा लेता।"

सौसन साँप-छछूंदर की तरह ऐसी हाँ और नहीं के फंदों में जकड़ गई, कोई निर्णय ही नहीं कर सकी।

"इसलिए मुझे मेरे ही मार्ग से जाने दो। वह राजकुमार क़ैदखाने से भागकर शमशी तालाब के जंगलों में छिपा है। अभी मैं आसानी से उसे मार डालूंगा।"

"उनके साथ सहायक होंगे। तुम कैसे अकेले ही उनका सामना कर सकोगे ?"

"वह अकेला ही है। जो सिपाही उसे मारने के लिए भेजा गया था, उसने उसकी दोनों आँखें फोड़ दीं। इस रात में उस अन्धे को मार डालना बड़ा आसान है।"

"हे भगवान् ! क्या तुम अन्धे की हत्या करोगे ? नहीं, मेरे दिल में संतान की चाहना है। तुम्हारे सिर पर के इस पाप से क्या उसकी रक्षा हो सकेगी ?"

उस समय उस अन्धे ने अपनी आँखों को टटोला। उसकी पीड़ा द्विगुणित हो गई। भय से उसकी कराह उसकी साँस में ही घुल गई।

रमजानी बोला—"तू पागल है। उसके भाग्य में तो मरना ही है। जिसके भाग्य में वह अशर्फियों की थैली बदी है, वह मारेगा ही उसे। फिर दोनों आँखें गँवाकर उसका जीना ही क्या! जनता के बीच में रहेगा तो वैसे बच नहीं सकता, जंगल में भाग गया तो कितने ही हिस्र पशु हैं उसके प्राणों के भूखे। इसलिए मुझे जाने दे और बता गँडासा कहाँ है?"

सौसन ने फिर उसका हाथ पकड़कर कहा—'किसी को साथ ले लो, अकेले ही क्यों?"

"साथ गँडासे का होगा, आदमी का नहीं। वह अशर्फी की थैली में हिस्सा माँगेगा। गँडासा कहाँ है?"

चारपाई के नीचे उसकी मूँठ चमक उठी रमजानी की आँखों में—"वह रहा गँडासा!" उसने गँडासा वहाँ से खींच लिया। "अगर रात में देर से लौटा तो तू घबराना नहीं। कोई पूछे तो बता देना सिपाहियों में भरती होने चले गए।"

रमजानी अँधेरे में गँडासा लेकर चला गया। सौसन बाहर जाकर कुछ दूर तक उसकी छाया अदृश्य होती हुई देखती रही, फिर भीतर लौट आई। उसने भगवान् के लिए दोनों हाथ ऊपर उठाए—"हे प्रभु! मेरे ऊपर दया करो।"

चारपाई के नीचे राजकुमार सोचने लगा—"गँडासा मेरी गर्दन के इतने निकट रक्खा हुआ था, वह फिर दूर चला गया। आँखें खोकर भी मुझे मेरे प्राणों का इतना प्रबल मोह क्यों हो उठा?"

सौसन बोली—"हे भगवान्, मेरा पति राजकुमार का शत्रु नहीं है। दुश्मन है उसकी सौतेली माँ। जिस तरह उसका सिर काटने में गँडासे का कोई क़सूर नहीं, उसी तरह यह रमजानी, महारानी शाह तुर्कान की इच्छा का गँडासा, यह भी निर्दोष है। मैं उस थैली की बहुत-सी अशर्फियाँ दान में दे दूँगी। हे प्रभु, हमें क्षमा कर, उसके रक्त का कोई भी छींटा हमारे ऊपर न पड़े!"

८

अचानक सौसन को चारपाई से नीचे आती हुई किसी की पीड़ा-भरी साँस सुनाई दी। उस अकेली नारी के भय नहीं उपजा, उसकी करुणा जाग उठी। उसने बड़ी समवेदना में भरकर पूछा—"कौन ?"

उस अँधे को मारनेवाला चला गया था, वह बचानेवाली की खोज में चारपाई के नीचे से निकला। सौसन के पैरों को टटोल, उन पर गिरकर बोला—"बचा दो, बहन ! बचा दो मुझे।"

सौसन हक्की-बक्की होकर रह गई—"कौन हो तुम ?"

"वही दुर्भाग्य का शिकार कुतुबुद्दीन हूँ मैं।" उसने अपना सिर सौसन की ओर उठाया। "मेरी आँखें माथे पर से निकाल ली गई हैं और अब माथा भी कंधों पर से हटा दिए जाने की तैयारी है।"

इस विचित्र संयोग की रचना समझ ही में नहीं आई सौसन के। वह चकित होकर रह गई और कई क्षणों तक उसके मुख में कोई शब्द ही नहीं बन सका !

कुतुबुद्दीन ने फिर उसके पैरों पर अपना सिर रख दिया। सौसन एक ओर को हट गई। वह अपना सिर उठाकर उसे टटोलने लगा। सौसन ने देखा उसके गालों पर रक्त-रेखाएँ सूख गई थीं।

अंत में उसने कहा—"तुम कब और कहाँ से यहाँ आकर छिप गए ?"

'मैं क्या बता दूँ ? आँखों के अभाव ने मुझसे देश और काल दोनों का ज्ञान छीन लिया। बहन, मेरे ऊपर दया करो।"

"तुमने अवश्य ही हमारी बातें सुन ली होंगी। मेरे पति गंडासा लेकर तुम्हारी ही खोज में गए हैं।"

"पर मुझे दिल्ली का राजसिंहासन और राजमुकुट कुछ भी नहीं चाहिए।"

"लेकिन उनकी अशर्फियों की प्यास कैसे मिटे ?"

"मुझे कहीं छिपा दो।"

"कहाँ छिपा दूँ ? इस चारपाई के नीचे कितने दिनों तक तुम्हारी रक्षा हो सकेगी ?"

"केवल आज की ही रात।"

"कल प्रभात होने पर तो चारों ओर संकट-ही-संकट खड़े हो जावेंगे। तुम किसी को नहीं देख सकते, अशर्फियों के उजाले में तुम सभी को दिखाई दे जाओगे।"

"कुश्के फीरोज़ी में मुझे मेरी माता के पास पहुँचा दो।"

"इस रात में अपना घर छोड़कर तुम्हारे साथ कहाँ चली जाऊँ ? यदि मार्ग में वे मिल गये तो ?"

"उनको सिर्फ मेरे सिर की ही क़ीमत चाहिए न ! मैं उतनी अशर्फियाँ अपनी माँ से उन्हें दिला दूँगा।" बड़े आकुल होकर उस अंधे ने प्रार्थना की।

सौसन बड़े सोच-विचार में पड़ गई।

'तुम क्यों कोई उत्तर नहीं दे रही हो ? क्या तुम्हें मेरी बात का विश्वास नहीं !"

"किसका विश्वास करूँ और किसका अविश्वास ?"

'अंधा-काना जैसा भी हूँ मैं। माँ मेरा पूरा मूल्य चुका देगी। शाह तुर्कान ने मेरे सिर की कितनी क़ीमत लगाई है ?"

"न मुझे उसकी गिनती बताई गई है। न मुझे उसका लालच ही है।"

"मैंने अपने बहुत से आभूषण भी उतारकर महल में छिपा रक्खे हैं। मैं उन्हें भी दे दूंगा। तुम्हें सिर्फ मुझे दूर से रास्ता ही बताना होगा।"

"अगर रास्ते से रुक्नुद्दीन के सिपाहियों ने देख लिया तो राजकुमार ! तुम्हारे सिर पर तो तलवार लटक ही रही है, मुझे क्यों मौत के घाट उतारते हो ?"

"दो बुर्के निकाल लाओ। एक तुम पहन लेना, दूसरा मेरे सिर पर डाल फिर इस रात के अंधेरे में हमें पहचाननेवाला कौन है ?"

"मैं इस घर में अकेली ही हूँ। दूसरा बुर्क़ा कहाँ से लाऊँ?"

'पड़ोस में कहीं से माँग लाओ।"

"जहाँ से भी माँग लाऊँगी, वह संशय से मेरा पीछा करेगा और तुम धर लिए जाओगे।"

कुतुबुद्दीन किसी प्रकार न माना। सौसन को यह चिंता होने लगी कि अगर कोई आ गया तो फिर यह पकड़ा ही जायगा और फिर क्यों नहीं मैं इसे बाहर सड़क पर छोड़ आऊँ।

उसने फिर प्रार्थना की–"मेरे ऊपर दया करो। अगर मैं जीता रहा तो तुम्हारे इस उपकार का बदला चुका दूँगा।"

सौसन ने कोने में रक्खी हुई एक लाठी उठाई, उसे देते हुए बोली–"लो, एक हाथ से यह लाठी पकड़ लो, दूसरे हाथ से मेरी उँगली।"

कुतुबुद्दीन ने उसका कहना मान लिया। सौसन उसकी उँगली पकड़कर उसे बाहर ले चली। उसने अपने घर के द्वार बंद कर लिए, बोली—"किधर जाओगे?"

"जहाँ के लिए भी तुम्हारी दया जाग उठी हो।"

सौसन उसकी उँगली पकड़कर बाहर खींच लाई और शमशी तालाब की ओर ले चली।

"तुम कहाँ ले जा रही हो मुझे?"

"शमशी तालाब की ओर।" सौसन का विचार था कुछ दूर तक उसे ले जाकर कहीं छोड़ घर को भाग आवेगी।

कुतुबुद्दीन उसकी इस भावना को समझ गया और बड़े दीन-भाव से बोला—"मैं नहीं जानता, क्या कहूँ तुमसे! मेरे प्राण बचा देने के लिए तुम्हारे प्राणों में जो प्रेरणा हुई है तो क्यों नहीं तुमसे माता कहूँ। माँ, मुझे पहुँचा ही दो मेरी रक्षा तक।"

सौसन बोली--"इस रात में भला कैसे तुम्हें तुम्हारे महल तक पहुँचा सकती हूँ।" उसे पति याद आया जो गँडासा लेकर उसकी खोज में गया था।

फ़िर उसको महारानी की अशर्फियों की थैली दिखाई दी। वह उसका हाथ छोड़ने की चेष्टा करने लगी।

कुतुबुद्दीन ज़ोर से उसका हाथ पकड़कर गिड़गिड़ाया--"जब तुमसे मैं माँ कह चुका हूँ तो उस नाते को निभाओ, माँ! कुश्के फ़ीरोज़ी तक न सही, मुझे शमशी तालाब तक तो पहुँचा ही दो। वहाँ से सीधी सड़क है। मैं लोगों की दृष्टि से बचने के लिए धरती पर जानवरों की तरह चारों हाथ-पैरों से चला ही जाऊँगा। नहीं तो कीड़ों की तरह रेंगता हुआ।"

सौसन के कुछ दया जाग उठी-"नहीं, शमशी तालाब तक जाने में मुझे बहुत देर हो जायगी। मैं मकान में ताला भी नहीं लगा आई हूँ। हाँ, कुछ दूर तक और पहुँचा ही दूँगी।"

"कहाँ तक?"

"बरकत के प्याऊ के चौराहे तक। वहाँ से मैं तुम्हें उस सड़क पर रख दूँगी, जो सीधी तुम्हें शमशी तालाब पहुँचा देगी। जहाँ से तुम्हारे भटक जाने का फिर कोई डर नहीं है।"

"अच्छी बात है, यही सही।"

लुकती-छिपती सौसन उस अन्धे की ऊँगली पकड़कर ले जा रही थी।

कुतुबुद्दीन ने अपने हाथ की वह लकड़ी फेंक दी-"माँ, जब तुमने मेरी उँगली पकड़ रक्खी है, तो फिर इस सूखी-नीरस लकड़ी का क्या भरोसा।"

रमजानी शमशी तालाब का चक्कर लगाकर निराश हो गया, उसे उस अंधे राजकुमार का कोई सूत्र नहीं मिला। उसने मन में सोचा-"कहाँ गया वह अन्धा? आँखें खोलकर वह अंधा कहीं दूर नहीं जा सकता। हाँ किसी मज़ार की ओट में, किसी झाड़ी में या किसी गड्ढे में छिप गया हो, तो बात दूसरी है।"

उसे एक जान-पहचान का व्यक्ति मिल गया। उसने पूछा-"रमजानी, इस अँधेरी रात में किस मतलब से घूम रहे हो?"

"मतलब क्या बताऊँ तुम्हें। तुमने क्या किसी अं·······"कहते-कहते रमजानी चुप हो गया।

वह बोला--"अं···से क्या तुम्हारा मतलब किसी अंधे से है। वे सब क्या अन्धे ही हैं, जो शमशी तालाब के किनारे राज-मिस्तरियों का काय छोड़कर सिपाहियों में भरती हुं हैंए। और तुम अपने को आँख वाला समझ रहे हो ?"

"मैं भी भरती हो जाऊँगा।" आधे लफ्ज़ के मुँह से निकल जाने पर रमजानी ने सोचा, जब इस पर 'अन्धा' शब्द खुल ही चुका है तो क्यों न इससे पूछूं ?

फिर उसने पूछा-"औरत पहुँचा दी क्या ? कहाँ पहुँचाई ?"

"पहुँचा दी जायगी कहीं भी। पहले तुम एक बात तो बताओ, तुम कहाँ से आ रहे हो ?"

"शमशी तालाब से ही तो।"

"उसके आस-पास कहीं कोई अन्धा तो नहीं देखा ?"

"तुम्हारे ही गाँव की तरफ को जा रहा था। क्या मतलब है उससे ?"

"कुछ नहीं। ऐसे ही पूछ लिया।"

रमजानी अपने गाँव को ही लौट गया। दूर से अन्धकार में उसने एक मर्द के साथ एक औरत को आते हुए देखा। औरत उस मर्द का हाथ पकड़े हुए थी। उसको कुछ शक हो गया और वह सड़क से हटकर एक झाड़ी में छिप गया। उनके कुछ निकट आ जाने पर जब उसने उस औरत को पहचाना तो मन में कहने लगा--"अरे! यह तो सौसन ही है। इस रात में यह किस मर्द के साथ घर छोड़कर निकल भागी है ?"

वह पेड़ों की ओट में होकर उनके पीछे पीछे जाते हुए सुनने लगा।

पुरुष ने कहा-"तुम इतनी सुंदर हो और तुम्हारा पति बड़ा ज़ालिम।"

सौसन ने न-जाने उसको इसका क्या जवाब दिया, वह ठीक-ठीक नहीं सुन सका और मन में घोर ईर्ष्या से जलने लगा-"अन्त में इतनी चोर निकली यह सौसन! मैं इतने दिनों तक इसके झूठे प्रेम में लुभाया रहा!"

उसने गँडासे की मूठ बड़ी ज़ोर से अपनी मुट्ठी में पकड़ ली--"यह

गँडासा किसके लिए लाया था और किसके काम आ गया ? एक को छोड़, दो-दो । मैं इन दोनों में से किसी को नहीं छोड़ूँगा । पहले किसकी हत्या ?"

वह गँडासा तानकर ओट से बाहर निकल आया । सौसन ने जिस हाथ से अन्धे को पकड़ रक्खा था, रमजानी ने उसका वह हाथ झटक लिया और बोला—"कलंकिनी ! किसके साथ भागी जा रही है तू ? ठीक समय पर पकड़ ली गई है न ! अब नहीं छोड़ूँगा तुझे ।"

"धीरज रखकर अपने निर्णय को बदलो ।" सौसन रोते-रोते बोली ।

उसके आर्त स्वर से रमजानी की करुणा जाग उठी, उसने उसके बदले उस अन्धे राजकुमार का हाथ पकड़ लिया—"क्यों रे तू मेरो औरत को बहका कर कहाँ लिए जा रहा है ?"

सौसन ने रमजानी के हाथ से उसका हाथ छुड़वा दिया—"यह कहाँ ले जायगा ? स्वयं ही अन्धा है ।"

'अन्धा' शब्द सुनते ही रमजानी के मन का सारा चित्र बदल गया । सौसन उसे एक ओर को ले जाकर धीरे-धीरे बोली—'यह राजकुमार कुतुबुद्दीन है ।"

"वही अन्धा ! जिसकी खोज में मैं बड़ी देर से हूँ ?"

"हाँ, वही ।"

"तुम बड़ी अच्छी हो सौसन । कहाँ से पकड़ लाई हो इसे ?"

"अब मेरे कर्त्तव्य को तुम आगे बढ़ा दो न । इसे कुश्के फ़ीरोज़ी में इसकी माता के पास पहुँचा दो ।"

"ख़ूब ! ऐसा मूर्ख तुम्हें दिल्ली में दूसरा न मिलेगा । शाह तुर्कान की अशर्फियों पर लात मार दूँ ?"

"रानी हमीदा बेगम अपने बेटे के प्राणों की रक्षा के तुम्हें उतनी अशर्फियाँ ज़रूर गिन देगी ।"

'तूने मेरा शिकार लाकर मुझे सौंप दिया है । अब तू सीधे बिना पीछे को देखे अपने घर चली जा, जा ।" रमजानी उसका हाथ पकड़ उसे घर के मार्ग में रख आया । सौसन पति का कहना मानकर चली गई ।

रमजानी लौटकर उस अंधे के पास आ गया—"क्यों रे, इस सूनी रात में मेरी औरत को भगाकर कहाँ ले जा रहा था ?"

अंधा राजकुमार, जो अभी तक प्राण बचा लेने की आशा बाँध रहा था, फिर अपने आगे यमराज को देखकर काँप उठा—"मैं अंधा भला किसे भगाकर ले जाऊँगा ?"

"मैंने अपनी आँखों से तुझे देखा नही क्या ? तू उनमें धूल डाल देना चाहता है ?"

कुतुबुद्दीन गिड़गिड़ाते हुए रमजानी के पैरों पर गिर पड़ा, वैसे ही उस नृशंस ने अशर्फियों के लालच से उसके ऊपर झूठा आरोप लगा, पूरी ताक़त से गँडासा चलाकर उसकी गर्दन धड़ से अलग कर दीं।

पास ही बहते हुए एक नाले में उसने उस कटे हुए सिर के रक्त को धो डाला फिर अपना कमरबंद खोला और उसमें उसे बाँधकर ले चला कस्रे सफेद के राजभवन को।

●

९

सिंह द्वार पर जो सैनिक पहरा दे रहा था, उसने रमजानी को रोक लिया, उसने उसे कितना ही समझाया कि महारानी का बहुत आवश्यक काम करके लाया है वह। सैनिक किसी प्रकार नहीं माना। कहने लगा—"इस आधी रात में महारानी आराम कर रही हैं। उन्हें नहीं उठाया जा सकता।"

रमजानी बोला—"राज्य में भीतर-बाहर चारों ओर विद्रोहियों ने ऊधम मचा रक्खा है। ऐसे कठिन समय अगर महारानीको नींद आई तो बस भगवान् ही हमारा रक्षक है। वे अवश्यक ही जागती हुई मंत्रणा कर रही होंगी। तुम जाकर देखो तो सही। मेरा बड़ा जरूरी काम है।"

सैनिक किसी तरह सहमत नहीं हुआ–"मैं पहरा छोड़कर भीतर कैसे जा सकता हूँ ?"

रमजानी ने कहा––' मसऊद कहाँ है ?"

' वह भी सो रहे हैं सिहद्वार पर ।"

"जा, उनको उठाकर तो ला सकता है ?"

" नहीं, उन्हें भी नहीं । मेरा कर्त्तव्य बाहर से किसी को भीतर जाने से रोकना है न कि भीतर से किसी को यहाँ पर बुला लाना ।"

वास्तव में मसऊद भी अभी तक नहीं सोया था । महारानी के खास कमरे में कुछ मंत्रियों के साथ उसकी गुप्त मंत्रणा चल रही थी, रात ही में रुक्नुद्दीन की समर-यात्रा थी । उसी के लिए योजना बनाई जा रही थी ।

पहरे पर रमजानी को प्रहरी के साथ वाद-विवाद में पड़ा सुनकर मसऊद बाहर निकल आया–"क्या शोर मचा रक्खा है तुमने ?"

रमजानी उसे सलाम कर बोला–"महारानीजी से मिलना है मुझे ।"

"इस रात के समय ? हरगिज नहीं ।"

"बड़ा आवश्यक काम है।"

"काम बताना पड़ेगा ।"

"गुप्त काम है, बताया नहीं जा सकता । मैं उनका गुप्तचर हूँ ।"

"मैं तुम्हें अच्छी तरह नहीं जानता । महल में दीवारों की मरम्मत करने आये थे तुम । शाही अँगूठी है तुम्हारे पास ?"

"नहीं ?"

' फिर कैसे जाने दूँ ?"

"उनसे जाकर कह दो, रमजानी महारानी का काम पूरा कर आ गया ।"

"नहीं जी, इस समय किसी तरह नहीं । उजाला हो जाने पर सुबह आ जाना ।"

रमजानी ने इस पर कहा–"मेरे पास है शाही अँगूठी ।"

'तो अभी तक क्यों नहीं दिखाई ?"

"इधर कोने में दिखाऊँगा।" रमजानी उसे एक ओर ले गया। वहाँ पर उसने अपनी कमरबन्द में बँधे अभागे कुतुबुद्दीन का कटा हुआ सिर उसे दिखा दिया।

मसऊद ने धीरे-धीरे पूछा—"यह किसका सिर ?"

"राजकुमार कुतुबुद्दीन का, जिसे हमीदा रानी के हिमायती दिल्ली के सिंहासन पर बिठा देना चाहते हैं।"

"तू कोई जाल रचकर लाया है। मैं नहीं पहचान रहा हूँ इस सिर को।"

"शायद आँखों के फूट जाने के सबब से हुलिया बिगड़ गया।"

"आँखें क्यों फोड़ दी गईं ? जब सिर ही काटना था तो ?"

"पहला घातक कमज़ोर दिल का था।"

"समझ ले, अगर तू कोई झूठ बनाकर लाया है, तो तेरा सिर भी इसी तरह उड़ा दिया जायगा।"

मसऊद भीतर जाकर अमीना को बुला लाया। सारी रात की जागी हुई अमीना कुढ़ती-खीझती आकर बोली—"क्या है ?"

रमजानी बोला—"महारानीजी से कहो जाकर, रमजानी उनकी बहुत बड़ी खुशी लेकर हाजिर हुआ है।"

अमीना भीतर पूछने गई।

मसऊद बोला—"रमजानी, मेरा हिस्सा याद रक्खोगे न ? नहीं तो मैं अब भी तुम्हारा रास्ता रोक सकता हूँ।"

"उस्ताद, तुम्हें भुलाकर भला जाऊँगा कहाँ ?"

अमीना आकर बोली—"चलो, महारानी ने याद किया है तुम्हें, लाओ, इसे मैं ले चलूँ।"

रमजानी ने कपड़े में बँधे सिर को पीछे कर लिया। बोला—"तुम सिर्फ आगे-आगे मुझे राह दिखाती हुई चलो, ज्यादा भारी नहीं है यह, इसे मेरे ही पास रहने दो।"

कुछ अप्रतिभ होकर अमीना बोली–"देखूँ तो सही, इसमें तुम लाए क्या हो।"

"नहीं, तुम्हारे देखने की चीज़ नहीं है।"

अमीना कुछ रोष में भर कर मन में बोली--"बड़ा अजीब आदमी है यह। ऐसी कौन-सी अनोखी सौग़ात लाया है। देखूँगी कहाँ तक यह इसे अमीना की तीखी आँखों से छिपाकर रख सकेगा।"

रमजानी महारानी का भवन निकट जानकर अमीना से आगे बढ़ने लगा। उसने उसे रोककर कहा---"इस उतावली से काम नहीं चलेगा। पहले महारानी को मैं ही जाकर सूचना दूंगी। तब तक तुम्हें यहीं बैठना पड़ेगा।"

रमजानी बाहर पड़ी हुई एक चौकी पर बैठ गया। अमीना ने जाकर शाह तुर्कान को खबर दी। महारानी तुरन्त ही बाहर चली आई और रमजानी के हाथ के भार को देखकर समझ गई। उसने अमीना से कहा–"मैं इनको लेकर अपने शयन-कक्ष में जाती हूँ। इनसे कुछ मंत्रणा करनी है। तुम यहाँ किसी को न आने देना।"

अमीना बाहर ही खड़ी रह गई। शाह तुर्कान ने रमजानी से कहा– "वही है न?"

'हाँ, आपके दुश्मन का सिर। अब सुलतान रुक्नुद्दीन की राजगद्दी का दावेदार कोई नहीं रहा।"

महारानी द्वार पर पड़े परदे को गिराकर रमजानी को एक कोने में ले गई। बोली–"कपड़ा हटाओ।"

रमजानी ने कपड़े की गाँठ खोलकर उस अभागे राजकुमार का सिर शाह तुर्कान को दिखाया। वह नहीं मानी। बोली–"नहीं, यह राजकुमार कुतुबुद्दीन तो नहीं जान पड़ता।'

"महारानी जी, मैं आपका तुच्छ सेवक, क्या कभी आपको धोखा दे सकता हूँ! आँखें निकल जाने से ही चेहरा कुछ अनजाना-सा लगता है।"

"हाँ, मैंने उस गुप्तचर को फाँसी पर लटका दिया है, जो इसे मारने

के बदले सिर्फ इसकी आँखें फोड़कर चला आया था। तुम भी समझ लो, अगर तुम भी इनाम के लालच से मेरे लिए कोई धोखा बनाकर लाए तो इसका फल तुम्हारे लिये संकट का कारण हो जायगा।"

रमजानी सोचने लगा—"बड़ी चालाक औरत है यह ! अशर्फियाँ बचाने के लिए अब ऐसा कह रही है। प्रकट में बोला—"महारानीजी, आपको धोखा देकर फिर राजधानी में कितने दिन जी सकता हूँ ?"

उसका संशय अब भी नहीं मिटा। वह उस कटे हुए सिर को घुमा-फिराकर विविध कोणों से देखने लगी तो रमजानी ने कहा -'तुम्हारी यह दासी पहचान लेगी इसे।"

"कौन, अमीना ?"

"हाँ, उसे बुलाकर क्यों न पूछ लिया जाय ?"

"दिखा लो।"

कपड़े से ढककर वह सिर एक चौकी पर रख दिया गया। रमजानी बाहर से अमीना को भीतर बुला लाया।

शाह तुर्कान बोली—'लेकिन तुम्हें यह बात अपने ही भीतर रखनी होगी। तुम मेरे अन्तरंग की दासी हो। मेरा तुम पर विश्वास है। क्यों ?"

"मैं आपकी सेविका हूँ। आपके विश्वास को पाकर मैं धन्य हूँ।"

रमजानी ने कटे हुए सिर पर का कपड़ा हटाकर उससे पूछा-'पहचानती हो, यह किसका सिर है ?"

अमीना ने उसे देखा। उसने दोनों हाथों से अपना मुख ढक लिया। फिर उसे देखा बड़े ध्यान से। वह चीखकर बड़ी जोर से रोने लगी।

'क्यों, रोने क्यों लगी ?"—महारानी ने पूछा।

"मुझे डर लगता है इस कटे हुए सिर को देखकर।"

"किसका है यह सिर ?"

"राजकुमार कुतुबुद्दीन का।"

"ठीक पहचान रही है ?"

"क्यों नहीं ? शाही महल में मैंने पहली नौकरी हमीदा बेगम के ही यहाँ की थी। राजकुमार कुतुबुद्दीन की सेवा में भी थी मैं और इनकी हमजोली भी। इनके सिर में यह चोट का निशान, बचपन में महल की सीढ़ियों पर यह गिर पड़े थे।" अमीना फिर दोनों हाथों में मुँह लेकर रोने लगी।

"मेरी खुशी की घड़ी में तेरे रोने का मतलब क्या है ?"

"महारानीजी, मैंने कल रात इस कटे हुए सिर के धड़ को दोनों हाथों में तलवार लिए एक काले घोड़े में चढ़कर कस्रे सफ़ेद की तरफ आते हुए देखा। उसके भीतर एक डरावनी आवाज़ आ रही थी—'मेरा सिर कहाँ है ? मैं नहीं जानती, यहाँ क्या होनेवाला है ?" अमीना फिर रोने लगी।

अब अमीना की ओर समवेदना दिखाकर वह बोली—"रो मत। फिर क्या कहा उस घोड़े पर के सवार ने ?"

"उसने तो कुछ नहीं कहा। मेरी समझ में आता है, यह सिर उसी धड़ के पास रख दिया जाय। नहीं तो महारानीजी ! महारानीजी ! मैं नहीं जानती क्या हो जायगा ?' वह फिर रोने लगी। उसने महारानी के दोनों हाथ पकड़ अपना सिर उनके पैरों पर रख दिया।

"तेरे मन में डर समा गया है। अरी पगली, सपने भी क्या कहीं सच होते हैं ?" शाह तुर्कान ने रमजानी की ओर देखा।

उसने हाँ-में-हाँ मिलाई—"नहीं महारानीजी।"

"होते हों, चाहे नहीं, मैंने अपने मन की बात आपसे कह दी। मेरे सिर में चक्कर आ रहा है। मुझे आज छुट्टी दे दीजिए। कोई काम आज न हो सकेगा मुझसे।

शाह तुर्कान ने उसे अपने पैरों पर से उठा लिया। अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछते हुये रमजानी से पूछा—"धड़ कहाँ पड़ा है ?"

"शमशी तालाब के आगे जो मीठे नीम का पेड़ है, उसके चबूतरे के नीचे, नाले के पास।"

"यह सिर अब हमारे किस काम का ? रात-ही-रात में इसे उस धड़ के पास रख सकोगे ?"

"क्यों नहीं ? आपका सेवक हूँ ।"

"अमीना, जा तू आराम कर। पर न तो तुझे इस कटे सिर की बात किसी पर खोलनी होगी, न अपने सपने का भेद। अगर तुझसे इसमें कोई भूल-चूक हो गई तो फिर मैं तुझ पर कुछ भी दया न कर सकूँगी।"

अमीना आँसू पोंछती हुई गई। कस्रे-सफ़ेद के पास ही नौकर-चाकरों के घर थे। वहीं एक में वह अपनी माँ के साथ रहती थी।

उसके जाने के बाद शाह तुर्कान ने रमजानी से कहा—"तुम भी खबरदारी से चले जाओ और इस सिर को वहीं रख दो। बस अब इसके बाद सिर्फ एक ही दुश्मन और ! समझ गए न उसे।"

"हाँ, समझ गया। अगर भगवान् झूठ न बुलवाए तो उसका नाम रज़िया है। मैं अब उसकी बारी समझता हूँ।"

"तब सोनपत की सूबेदारी तुम्हें दे दूँगी, इसे पत्थर पर की लकीर समझो।"

अशफ़ियों की थैली के बदले जब शाह तुर्कान ने उसे सूबेदारी का सुनहरा सपना दिखा दिया तो वह उस सिर को बाँधकर जाने लगा। महारानी उसे द्वार तक पहुँचाकर बोली—"भगवान् तुम्हारे रक्षक हों !"

रमजानी भी सिर झुका महारानी का कोरा आशीर्वाद लेकर चला गया।

सिंहद्वार पर रमजानी के पैरों की आहट पाकर मसऊद चौकन्ना हो उठा। उसके उत्साह-प्रदीप्त मुख को देखकर खोजा, बड़े आदरपूर्वक खड़ा हो गया। उसने तलवार की मूँठ पर दोनों हाथ रख दिये और झुककर उसका अभिवादन किया।

और रमजानी ने अभी से अपने को सोनपत का राज्यपाल समझ लिया। मसऊद को देने को जब उसने अपनी छूँछी हथेली दिखाई तो वह खोजा फिर बोल उठा—"दाता की जय हो !"

"अभी बटुए में सिर्फ आशा-ही-आशा भरी है। उसके भारी हो जाने पर तुम्हें क्यों भूला जा सकेगा ?"

अमीना रोती हुई घर आई। उसकी माँ ने जब उससे रोने का कारण पूछा तो उसने कुछ भी नहीं बताया, बोली—"नहीं माँ, अब मुझे कस्रे-सफ़ेद में नौकरी करनी ही नहीं है। मैं ऊब उठी हूँ।"

चिंता में भरकर माता ने पूछा—"क्यों बेटी ?"

"सुलताना रज़िया की माता जब कुश्के फ़ीरोज़ी में भेज दी गई थी, तब मुझे भी उन्हीं के साथ वहाँ चला जाना था। हम लालच में आ गए !"

"यहाँ कोई भूल हो गई। किसी ने कोई कड़ा लफ्ज़ कह दिया क्या ?"

"नहीं, ऐसा तो कुछ नहीं।"

"फिर क्या कोई चोरी लगाई है ?"

"नहीं।"

"तो क्या महल में आने-जानेवाला कोई बुरी दृष्टि से देखता है तुझे ?"

"मैं आँखों में उँगलियाँ कोंच दूँ उसकी, कौन है ऐसा ?" सहसा उसे कुतुबुद्दीन की आँखों में खोंस दी गई सींकें दिखाई दीं और वह फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी—"बस अब कह चुकी मैं, वहाँ नौकरी करने नहीं जाऊँगी।"

"तो फिर हम खायेंगे क्या ? मैं बुढ़िया हो गई अब, किसी की सेवा में नहीं जा सकती। शादी के लिए मैं तुझसे कितनी बार कह चुकी हूँ।"

शादी का नाम सुनते ही फिर उसके आँसुओं का अवरुद्ध बाँध टूट पड़ा। वह फफक-फफककर रोने लगी।

बात ऐसी थी बचपन में राजकुमार कुतुबुद्दीन के साथ खेलते-खेलते उन दोनों के बीच में प्रेम हो गया। राजकुमार ने उसी के साथ विवाह करने का उसे वचन दे दिया था। सुलतान इल्तुतमिश की जीवित अवस्था तक यह सर्वथा असंभव था कि उनके राजकुमार का विवाह एक दासी की पुत्री के साथ संपन्न हो। ख़ानदान तो उनका भी एक दास ही के नाम से प्रसिद्ध था, प

इसे वह भाग्य का एक कुचक्र-मात्र मानते थे। असल में तो इल्तुतमिश एक ऊँचे कुल में ही उत्पन्न हुये थे।

सुलतान की मृत्यु के बाद फिर राजकुमार की माता ने भी इस टेक को स्थिर रक्खा। फिर समय ने ऐसा पलटा खाया कि रज़िया सिंहासन पर नहीं बैठ सकी। शाह तुर्कान की तूती बोलने लगी। राज्य के चालीस तुर्की सरदारों की सहायता पाकर अब सुलताना होनेवाली रज़िया के जीवन के लाले ही पड़ गए!

राजकुमार कुतुबुद्दीन की दीन-हीन दशा देखकर अमीना ने अपने प्रेम में कोई अन्तर नहीं आने दिया। उसको प्रबल विश्वास था कि एक दिन उसे उसका कुतुबुद्दीन प्राप्त होगा ही। उसे केवल उसका ही लालच था, किसी राज-पद, राजसी सत्ता का मोह न था। कुतुबुद्दीन भी उसके साथ किसी झाड़-फूस की झोपड़ी में भी जीवन-यापन करने के लिए तैयार था।

अब राजकुमार का अंधा और कटा हुआ सिर देखकर उसको सारा जगत् सूना दिखाई देने लगा। इस पर भाग्य की दोहरी मार कि वह अपनी पीड़ा को प्रकट में रो भी नहीं सकती थी।

माता को अपने दुःख का असली भेद नहीं दे सकी वह। बोली—"शाह तुर्कान को मेरे ऊपर शक हो गया है। वह समझती है मैं रज़िया बेगम की जासूस हूँ और कस्रे सफेद के तमाम गुप्त रहस्य रात-ही-रात कुश्के फ़ीरोज़ी में उसके पास पहुँचा देती हूँ। मुझे वहाँ अब पग-पग में प्राणों का ख़तरा है।"

उसकी माता ने उसे छाती से लगाकर कहा—"नहीं बेटी, मुझे भूखी-प्यासी रहना स्वीकार है, पर तुझे खोना नहीं।"

"हम अपना कर्त्तव्य नहीं भूले। रोटी पर भगवान् ने हमारा नाम लिख ही रक्खा है। चुपड़ी न सही, रूखी तो मिलेगी ही।"

माता ने अमीना के सिर पर हाथ रखकर कहा—"तेरी आयु बड़ी हो बेटी! जो तुझे सही और ठीक जान पड़े, तू वही कर।"

"वे लोग जब मुझे सुलताना रज़िया की जासूस समझने लगे हैं तो क्यों नहीं मैं वही बन जाऊँ?"

"नहीं-नहीं बेटी, ऐसा नहीं। हम लोग ग़रीब हैं। हमें किसी की तरफ़दारी करनी ठीक नहीं।"

जो असहाय है, जिस पर अत्याचार हुआ है, उसका साथ देना पड़ेगा।" अमीना माता के कान के पास अपना मुँह ले जाकर बोली—"शाह तुर्कान ने राजकुमार कुतुबुद्दीन की आँखें फोड़कर कल रात उसे मरवा डाला है।"

"कौन कहता है ?"

"मैंने अपनी आँखों से उसका वह कटा हुआ सिर देखा है। उसका धड़ जंगल में पड़ा है अनाथ होकर। उसे जंगली जानवर नोच और उधेड़ रहे होंगे। बड़े शर्म की बात है, उतने बड़े सुलतान इल्तुतमिश का बेटा बिना कफ़न और क़ब्र के निर्जन जंगल में पड़ा हो।"

"होनहार पर हमारा क्या वश है ?"

"जो हो चुका है,उस पर तो है। राजकुमार की माता पर क्या बीतेगी ? मैं अभी जाकर रज़िया बेगम को यह सूचना देती हूँ। उसका प्यारा भाई मार डाला गया हो और उसके घरवालों को कुछ भी पता न हो। क्या मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं माँ!"

अमीना रज़िया बेगम के महल को चली। इल्तुतमिश के समय के कुछ स्वामिभक्त सरदार औंर सैनिक उनकी सहायता कर रहे थे, पर रजिया के पास तक पहुँच जाना आसान बात नहीं थी, क्योंकि अमीना, उसकी शत्रु शाह तुर्कान के महल की दासी, कौन उसे रज़िया तक जाने देगा। न-जाने वह किस कुचक्र को लेकर आई हो।

पर अमीना अपने दृढ़ निश्चय पर अटल थी। उसकी सेवा की भावना उसे निर्भीक बनाकर ले चली। वह कुश्के फ़ीरोज़ी के सिंह द्वार पर पहुँची तो सिपाहियों ने उसे भीतर नहीं जाने दिया, पर वह निराश होकर लौटी नहीं। उसने भटिंडा के सूबेदार अलातूनिया को अपने अंगरक्षकों के साथ घोड़ों पर सवार होकर आते देखा। उसने बुर्क़ा हटाकर सूबेदार को सलाम किया।

अलातूनिया ने उसे पहचान लिया—"क्यों अमीना, बड़ी उदास जान पड़ती है। कुशल तो है ?"

"नहीं है।"

सूबेदार ने समवेदना के स्वर में पूछा—"क्या हो गया ?"

'बेगम साहबा के लिए एक आवश्यक सत्य को लेकर आई हूँ मैं, पर ये लोग मुझे नहीं जाने देते।"

"मैं पहचानता हूँ तुझे। चल मेरे साथ।" घोड़ों और अंगरक्षकों को वहीं छोड़ अलातूनिया अमीना को लेकर भीतर चला गया। रजिया बेगम के कक्ष में पहुँचकर सूबेदार बोला—"तुम्हारी माता जी बहुत बीमार हैं, मैं उन्हीं का सुख पूछने आया हूँ।"

"कई दिन से राजकुमार कुतुबुद्दीन का कहीं पता नहीं है। माता पुत्र के शोक में ही अचेत हैं।"

कुतुबुद्दीन का नाम सुनते ही अमीना रो पड़ी—"मैं इसी बुरे समाचार को लेकर आई हूँ। शाह तुर्कान ने राजकुमार कुतुबुद्दीन का वध करा दिया है। मैंने उनका कटा हुआ सिर देखा है। आपके भाई की लाश शमशी तालाब से थोड़ी दूरी पर मीठे नीम के चबूतरे के पास पड़ी है!"

रजिया बोली—"मैं भाई के इस भयानक अंत की कल्पना कर ही रही थी, क्योंकि कुछ सरदारों ने उसे दिल्ली के राज सिंहासन पर बिठाने की घोषणा की थी। इसी से शाह तुर्कान उसके रक्त की प्यासी हो गई! सूबेदारजी, ऐसे कठिन समय में भगवान् ने आपको मेरे ही लिए भेज दिया।"

"मैं अपने अंगरक्षकों के साथ आपकी पूरी मदद कर सकता हूँ।"

नहीं, वह मेरा सगा भाई। हैमैं अपने हाथ से उसे मिट्टी दूँगी। उसे दिल्ली के राजमुकुट का कोई लालच नहीं था। उसे बड़ा सादा जीवन पसंद था। उसे राजसी चमक-दमक, जलसे-जलूस, ऐश्वर्य-विलास, सबसे बड़ी घृणा थी। आज उसका धड़ मस्तक-विहीन होकर जंगल में पड़ा है। कोई पूछनेवाला नहीं। हे भगवान्, यह क्या हो गया! उसके वियोग में माता बेहोश पड़ी है। कैसे उन्हें यह समाचार दिया जाय ?"

११

भटिंडा से सूबेदार अलातूनिया रज़िया के पास एक उत्सव की संयो-जना के लिये आया था, पर जाना पड़ गया उसे श्मशान में। जो अंगरक्षक उसके साथ आये थे उनको भी। मीठी नीम के चबूतरे तक पहुँचने में उन्हें कोई कठिताई नहीं मालूम दी। रज़िया के साथ सभी घोड़ों पर सवार होकर चले। आवश्यक सामान भी घोड़ों पर लाद लिया गया था।

रमजानी रात-ही-रात में राजकुमार का कटा हुआ सिर उसके धड़ से मिलाकर चला गया था। अलातूनिया अपनी देख-रेख में क़ब्र खुदवाने लगा। उसके दो अंगरक्षक भूमि खोदने लगे और दो उसमें से मिट्ठी और पत्थर निकाल-निकालकर बाहर फेंकने लगे।

रज़िया नीम के चबूतरे में कठिन धरती पर बैठी-बैठी दुर्भाग्य के चक्र और संसार की नश्वरता को कोस रही थी। कुछ समय बाद अलातूनिया को रज़िया के निकट जाता हुआ देखकर उन चारों ने हाथ रोक दिये। नीम के चबूतरे और क़ब्र के लिए छाँटी हुई जगह के बीच में बहुत-सी झाड़ियाँ थीं, उनके तलों में भी अंतर था।

एक सिपाही कुछ ऊपर जाकर देख आया। लौटकर बोला—"सूबेदार रज़िया बेगम के पास चला गया।"

दूसरे ने पूछा—"क्या कह रहा है ?"

"सुनाई कुछ नहीं देता।"

"अरे, दिखाई तो दे रहा होगा।"

"हाँ, दिखाई दे रहा है। राजसिंहासन की प्यासी एक कुमारी युवती उसके निकट, दो विवाह कर चुका हमारा सूबेदार, चला ही गया। उसे अवसर मिल गया। उसने अपने रूमाल से उसके गालों पर की आँसू की धारें पोंछ दीं।"

"सुन भी तो क्या कह रहा है ?"

"बीच में बड़ी दूरी है। आँखें पहुँच गईं, कान नहीं।"

"तो फिर कुछ और निकट चले जाने का साहस क्यों नहीं करता ?"

उसकी हिचकिचाहट पर दूसरा सिपाही उधर देखने गया।

अलातूनिया ने रज़िया के गालों पर के आँसू पोंछ दिए और चुपचाप उसके निकट खड़ा हो गया।

रज़िया ने कहा—"मुख पर के आँसू पोंछ देने से क्या होगा ? चोट भीतर मेरे हृदय की है।"

"उसका इलाज एक ही है, इन चोट पहुँचानेवालों की अच्छी मरम्मत कर दी जाय। उनके अत्याचार को सहन कर लेना हमारी दुर्बलता है और इसे दुर्भाग्य समझ लेना हमारा पाप है।"

रज़िया सूबेदार अलातूनिया के इन शब्दों से उत्साहित होकर सीधी बैठ गई। उसने भी घुटने टेक उसका दाहिना राथ उठाकर अपने माथे से लगा लिया।

रज़िया ने अपना हाथ हटाकर कहा—"सूबेदार जी, यह समय तो मेरे ऊपर बहुत भारी होकर टूटा है।"

"उसी भार को हल्का करने भगवान् ने मुझे यहाँ भेजा है।"

"कैसे ? सूबेदारजी !"

बहुत समय से तुमने मेरे चिंतन और ध्यान को अधिकृत कर रक्खा है। यदि तुम मेरे अंतःपुर की शोभा बढ़ा देने का वादा करो तो फिर क्यों न मैं तुम्हें अपनी बुद्धि और बाहु के बल से दिल्ली के राजसिंहासन में न बिठा दूँ ? तुमसे तुम्हारा अधिकार छीन लेनेवालों का मुँह काला न कर दूं तो सही।"

"सूबेदार, यह असंभव है।"

"तुम्हें क्यों नहीं मेरे साहस का विश्वास है ?"

"मैं तुम्हारे साहस और शक्ति की बात नहीं कहती। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए पिता से मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, वही हमारे बीच की बाधा है।"

"उन्हीं की तो आंतरिक इच्छा थी कि तुम दिल्ली के राजसिंहासन में प्रतिष्ठित होओ।"

"पर केवल अकेले ही। किसी पुरुष का हाथ पकड़कर नहीं।"

"उतने बड़े सम्राट की यह कदापि दूरदर्शिता नहीं कही जायगी। नारी बिना पुरुष के अधूरी है, यह प्रकृति का एक अकाट्य नियम है। प्रकृति के इस अवरोध को कौन तोड़ सका है? संसार लुक-छिपकर तुम्हारे पीठ-पीछे तुम्हें जो अपवाद देगा, उसे अनसुना कैसे कर लोगी?"

"जब मैं अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ ही रही तो मुझे अपवादों से कुछ भी भय नहीं।"

"अच्छा, तुम किसी के हाथ न पकड़ो, यदि दूसरा कोई तुम्हारा हाथ पकड़ लेता है तो तुम्हारी प्रतिज्ञा अक्षुण्ण ही रहती है।" कहते हुए अलातूनिया ने फिर उसका हाथ पकड़ लिया।

"नहीं सूबेदार, यह तो फिर वही बात आ गई।" रज़िया उसका हाथ हटाने की कोशिश करने लगी।

अलातूनिया ने हाथ और भी अविचल होकर पकड़ते हुए कहा—"क्या बहुत दिनों तक वह हबशी याकूत तुम्हें घोड़े पर चढ़ाते हुए तुम्हारे हाथ नहीं पकड़ता था? पुराना अभ्यास क्या कोई सहज ही छोड़ सकता है?"

रज़िया उसके इस आक्षेप के उत्तर में बड़ी कठिनाई में पड़ गई। इतने ही में, दूर से किसी को आता हुआ देखकर, वह बोली—"हाथ छोड़ दो। देखो, कोई आ रहा है।"

वह दूसरा सिपाही, जो कुछ नज़दीक से उन्हें देखने गया था, कुछ देर बाद लौटकर बोला—"सुनो, सूबेदार कह रहा है उस कुमारी बेगम से कि अगर आप मेरे साथ विवाह करने को तैयार हैं तो मैं अपनी तलवार की नोक से आपको दिल्ली के राजसिंहासन पर बिठा सकता हूँ, नहीं तो मैं इसी तलवार से आत्महत्या कर यहीं मर जाऊँगा, आप मेरे ऊपर भी मिट्टी डाल दें।"

उसका साथी बोला—"यह क्या बकता है तू? फिर और एक क़ब्र खोदने से हमारी भी जान जावेगी।"

तब फिर वे चारों क़ब्र खोदने में दत्तचित्त हो गए। अलातूनिया के

आदेश के अनुसार की गई गहराई में पहुँच जाने पर एक सिपाही उन्हें सूचना देने चला गया।

उसके आ जाने पर वे दोनों उठ खड़े हो गए। रज़िया अपने आक्षेप की सफाई से मुक्त हो गई।

अलातूनिया ने मन-ही-मन असंतुष्ट होकर कहा—"क्या है? क्यों आए?"

सिपाही विनम्र होकर बोला—"सरकार, देख लीजिए। जितनी गहराई आपने बताई थी, हम वहाँ तक पहुँच गये।"

दोनों वहाँ को चले। अलातूनिया ने क़ब्र का निरीक्षण कर कहा—"ठीक है।"

उन सबने मिलकर उस अभागे राजकुमार को धरती माता की गोद में सुला देने के लिए तैयार किया। वे उसे क़ब्र में रखने लगे। इसी समय अलातूनिया ने देखा, दूरी पर कोई हाथ उठाये चिल्लाता हुआ उधर को आ रहा था।

कौन? सुध-बुध खोए, बिखरे बालों, मलिन वेश में, दौड़ते-डगमगाते अमीना चली आ रही थी। आते ही वह क़ब्र के पास हाँफकर बैठ गई। साँस स्थिर होने पर धीरे-धीरे बोली—"भगवान् का धन्यवाद है, मैं ठीक ही समय पर आ पहुँची। मैं भी, मुझे भी, मुझे भी। मुझे भी अब ज्यादा देर न होगी।"

सभी अपना हाथ रोक बड़े अचरज से उसे देखने लगे। समझ में नहीं आया, वह क्या कह रही है।

सबको चुप देखकर वह बोली—"ऐसे क्यों देख रहे हैं आप लोग मुझे? मैं अब क्यों इस सच्चाई को छिपा दूँ। राजकुमार कुतुब के साथ मेरा गुप्त प्रेम था। हम दोनों ने विवाह करने का एक-दूसरे को वचन दिया था, पर हमारे दो शत्रु थे। एक सुलतान इल्तुतमिश, उनके मर जाने पर महारानी हमीदा। इन्होंने मेरा प्रेम नहीं देखा, मेरा वंश देखा। अब महारानी हमीदा भी दम तोड़ रही हैं, इसलिए हमारे विवाह को कोई रोकनेवाला न रहा।"

सबने उसकी अनर्गल बातों को सुनते हुए राजकुमार को क़ब्र में सुला दिया।

अमीना फिर कहने लगी—"आपमें से क्या किसी को भी मेरी बात का विश्वास नहीं होता ? अभी हो जायगा। मेरे सच्चे प्रेम को देख लोगे। मैं ज़हर पीकर आई हूँ। अगर प्रेम झूठा होता, तो मैं रास्ते ही में मर जाती। अगर मैं रास्ते ही में मर जाती तो मेरा दूल्हा यहाँ मेरी प्रतीक्षा करते-करते मेरे प्रेम से निराश हो जाता। अब आप लोग क्या मेरे साक्षी न होंगे ?"

उसने धीरे-धीरे क़ब्र में अपने दोनों पैर लटका दिए। किसी ने उसे नहीं रोका, न ही किसी के मुख से कोई शब्द ही निकला। क़ब्र की गहराई में झाँककर वह बोली—"कुतुब ! मेरे प्यारे कुतुब ! मैं आ गई। आ क्यों न जाती ? हमारे विवाह के बाजे बज उठे।" वह क़ब्र में गिर पड़ी !

सबने दौड़कर उसे सँभालना चाहा। अब क्या सँभलती वह ? उसकी आँखें फट चुकी थीं और उसके प्राणों का पंछी उस अनंत लोक को उड़ गया, जहाँ से कोई भी लौटकर नहीं आया।

सभी ने आँखों में आँसू भरकर उसके प्रेम को अभिनंदित किया और हाथों का संपुट जोड़कर उन दोनों प्रेमियों की आत्मा की शांति के लिए भगवान् से प्रार्थना की।

रज़िया एक क़ीमती शाल ओढ़कर आई थी। उसने वह उन दोनों प्रेमियों को ओढ़ा दिया। फिर सबने क़ब्र पर मिट्टी डालनी आरंभ की। क़ब्र के भर जाने पर और दो हाथ मिट्टी ऊपर तक चढ़ा दी।

अन्त में रज़िया ने घुटने टेककर फिर उनकी शांति के लिए प्रार्थना की। सभी ने उसमें योग दिया। रज़िया ने मन-ही-मन यह प्रतिज्ञा की कि निकट भविष्य में अगर मैं समर्थ हो सकी तो यहाँ पर पक्की संगमरमर की समाधि बना दूँगी और उस पर सुदृढ़ छतरी।

सब लौट गये। रजिया को महल में लौट जाने पर यह समाचार मिला कि पुत्र की हत्या का समाचार सुनकर फिर रानी हमीदा के प्राण न रह सके। वह चल बसीं।

मसजिद से अजान की आवाज सुनाई दे रही थी। धीरे-धीरे वह प्रकाश की संधि में विलीन हो गई। दो किसान राजधानी में कुछ बेचने और कुछ खरीदने के लिए आए हुए थे। वे जल्दी-जल्दी जामा मसजिद के पास से होकर चले जा रहे थे।

पहला किसान बोला—"ठहर जा। सुबह से शाम तक हर घड़ी रोटी और पानी की ही चिंता ! अरे, जो उसका देनेवाला है, उसकी याद ही नहीं। चल मसजिद में।"

दूसरे ने जवाब दिया—"ठहर तो जा। देख, वह कौन आ रहा है सिर से पैर तक लाल कपड़ों में।"

"कभी औरत-सी जान पड़ती है, कभी मर्द-सी। है कोई विचित्र ही। पहले उसको जान तो लें।"

उसके निकट आने पर एक ने पूछा—"कौन हो तुम ?"

उसने उत्तर दिया—"भाग्य की इतनी नहीं कहूँगी, जितनी इंसान की सताई हुई हूँ।"

उसके नारी-कंठ को सुनकर वे दोनों उसकी ओर विशेष आकृष्ट हो गए। उसका अधिक परिचय जानने को उत्सुक दूसरे ने उसे फटकारते हुए कहा—"इस तरह बेपरदा होकर घर से बाहर निकल आनेवाली तुम हो कौन ?"

"तुम गाँव में खेती करते हो। राजधानी से तुम्हारा अधिक मतलब नहीं। नहीं तो तुम मुझे जरूर पहचान लेते। मैं सुलतान इल्तुतमिश की लड़की रजिया हूँ। मेरा नाम तो सुना ही होगा। मेरे नालायक भाइयों पर सुलतान ने मुझे वरिष्ठता दी। इसीलिए उन्होंने पुरुषों की भाँति मेरा लालन-पालन और मेरी शिक्षा-दीक्षा की। मुझे जो अवसर दिया गया, मैंने उसके योग्य बनने के लिए पूरा-पूरा श्रम किया। सुलतान मुझे अपना उत्तराधिकार दे गए

थे, पर मेरे द्रोहियों ने षडयंत्र किया। अनेक बड़े-बड़े अमीर और सरदारों को वश में कर मेरा अधिकार छीन लिया गया।"

एक किसान दूसरे का मुँह देखकर घबड़ाते हुए बोला—"हमें राज-ताज की बातों से कोई मतलब नहीं। तुम्हारे इन लाल कपड़ों को देखकर हमें बड़ा डर लगने लगा।"

रज़िया बोली—"डरने की क्या बात है? मैं प्रजा को अपनी पीड़ा सुनाने आई हूँ। अत्याचार के विरोध में जब किसी को अपनी आवाज़ ऊँची करनी होती है तो इसी रंग के कपड़े पहनने की परंपरा है।"

दूसरा पहले का हाथ खींचता हुआ कहने लगा—"चल घर, चलें, बाल-बच्चे हमारी राह देख रहे होंगे।"

रज़िया बोली—"चलो, मसजिद में चलने का समय आया है। नमाज़ के लिए दीन और ईमान का डर रखनेवाले लोग जमा हुए हैं। इस समय उनके कान सच्ची बातें सुनने के लिए खुले हैं। मेरे ऊपर किए गए अत्याचार की कथा सुनो। मैं ही राज्य के हित की सच्ची उत्तराधिकारिणी हूँ। मेरे अधिकार की सहायता करो। मेरी पुकार में सहारा देकर उसे गगनभेदी बनाओ।"

फिर वह साथी का हाथ खींचकर बोला—"तुझे घर चलना है या नहीं?"

"मसजिद? नमाज़?" उसे रज़िया की आर्त्त वाणी ने प्रभावित कर लिया था।

"गाँव की मसजिद में पढ़ लेंगे, यहाँ बड़ी भीड़ है।"

"नमाज़ का समय जो निकला जा रहा है।"

"रास्ते में पढ़ लेंगे, भगवान् कहाँ नहीं है?"

"डरो नहीं, मेरे भाई। सच्चाई के लिए मेरी मदद करो। तुम पुरुष होकर डरते हो, मैंने चूड़ियाँ उतार कर रख दी हैं, यह देखो मेरे हाथों में!" रज़िया अपने कपड़ों के भीतर से तलवार निकालकर हवा में चमकाने लगी।

भौंहों की कमान चलानेवाली नारी के हाथों में तलवार नाचती हुई

देखकर वह किसान उसकी ओर आकृष्ट होने लगा था। साथी ने फिर उसे खींचकर पीछे किया—"बड़ी भयानक नारी जान पड़ती है यह !"

"कौन कहता है भयानक हूँ ? अत्याचारियों के लिए ऐसी हो सकती हूँ। मसजिद में चलो तो सही। वहाँ मेरी आत्मकथा सुनकर फिर तुम्हारा जो जी चाहे, कह लेना।"

रज़िया के पीछे-पीछे काले बुर्क़े में कोई औरत आ रही थी। उसको दो किसानों के साथ बातें करते देखकर वह निकट ही कहीं छिप गई। उस काले बुर्क़ेवाली के पीछे-पीछे और एक सफ़ेद बुर्क़ेवाली आ रही थी। उसको छिपती हुई देखकर वह भी मार्ग में रुक गई।

किसान उन दोनों बुर्क़ों की गतिविधि से घबरा उठा, और बल-पूर्वक अपने साथी का हाथ खींचकर अपने मार्ग में आगे बढ़ गया।

उनके जाने पर रज़िया ने अपनी तलवार कपड़ों के भीतर कर ली। सत्य की दृढ़ता और आत्मविश्वास के कवच में सुरक्षित वह जल्दी-जल्दी पग बढ़ाती हुई मसजिद की ओर जाने लगी।

अब वह काला बुर्क़ा प्रकट होकर फिर उसका अनुसरण करने लगा। वह किसी काली योजना से अनुप्राणित था। रज़िया ने पीछे की ओर देखा ही नहीं। वह अपने उज्ज्वल भविष्य को चित्रित करती हुई आगे-ही-आगे बढ़ी जा रही थी मसजिद के मार्ग में।

कुछ ही क़दम चलने पर अवसर था उसने काले बुर्क़े के भीतर से कटार निकाल रज़िया की पीठ में घोंप देना चाहा था कि सफेद बुर्क़ेवाले ने उसका हाथ पकड़ वार को निष्फल कर दिया। वह अपना हाथ छुड़ाकर भाग गया। सफ़ेद बुर्क़ेवाली ने फिर अपना हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ लेना चाहा। पर केवल उसका बुर्क़ा ही हाथ आया, जिसे वह उतारकर भाग गया, वह एक मनुष्य निकला !

रज़िया चिल्लाई—"हे भगवान् !" फिर उसने उस बचानेवाले से पूछा—"कौन हो तुम ?"

अपना सफ़ेद बुर्क़ा खोलते हुए बोला—"मैं हूँ सुलताना, आपका सेवक। आपके बचपन का साथी।" उसने जब अपना बुर्क़ा खोलकर हाथ में लिया तो उसके भीतर से निकल आया हबशी याकूत !

"पर वह हत्यारा भाग गया। खेद है, मैं उसे पकड़ नहीं सका और इस बात का भी कम दुःख नहीं कि हम उसे पहचान भी नहीं सके।" याकूत ने कहा।

रज़िया ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—"मेरे सारे स्वप्न धूल में मिल गए होते याकूत। तुम कैसे आ गए ?"

"दिल्ली में आपके लिए कैसा भयानक वातावरण बना दिया गया है। यह जानकर भी आप बेखटके बिना किसी अंगरक्षक के बाहर चली आईं तो क्या मुझे सावधान हो जाना नहीं था ? चलिए महल में।" याकूत ने सानुरोध कहा।

"नहीं याकूत तुम उसे महल क्यों कहते हो ? चारों तरफ़ से जासूसों से घिरा हुआ है वह अभी। शाह तुर्कान उसे मेरा कैदखाना बना देने की चिंता में है। अगर वह इसमें सफल हो गई तो फिर उसके मेरी क़ब्र बनने में भी क्या देर लगेगी ? मरना जब है ही तो सारी प्रजा पर मैं सच्चाई को उघाड़कर क्यों न मरूँ ?"

"इस लाल वेश में सभी पर प्रकट होकर तुम जा कहाँ रही हो ?"

"हाँ, सभी पर प्रकट होने के लिए ही यह रंग पसंद किया है, मैं मसजिद में जा रही हूँ कि दीन-ईमानवाले मेरी बात सुन लें।"

"सुलताना, हर बात के लिए एक सुयोग होता है। समझदार उसे समझकर ही आगे पैर बढ़ाता है। मसजिद में शाह तुर्कान के अनेक सिपाही नमाज़ के बहाने लोगों का भेद लेने आए होंगे। सारे शहर में उसके जासूस वेश बदल कर चक्कर काटते रहते हैं। अभी तुम्हें इसकी साक्षी नहीं मिली ? घातक के दुर्दांत प्रहार से बचकर आई हो।"

"याकूत, तुम एक बहादुर सिपाही हो। तुमने मुझे भी वैसी ही निर्भ-

यता सिखाई है। वीरता रात-दिन, सुयोग या कुयोग की राह नहीं देखती। उसके लिए कभी समय है। देख नहीं रहे हो तुम ? दिन-दिन दशा खराब होती जा रही है। सुयोग के आने तक फिर सभी कुछ चला जायगा, इसलिए मुझे मसजिद में जाने दो। शाह तुर्कान के जासूस वहाँ हैं तो क्या भगवान् का भय रखनेवालों की कमी है ! ' रज़िया मसजिद की तरफ दौड़ने लगी।

याकूत ने उसका हाथ पकड़ लिया।

' नहीं याकूत, अब तुम मेरा हाथ नहीं पकड़ सकते। मैंने अपने पिता से प्रतिज्ञा की है कि अब मैं आजन्म कुमारी ही रहूँगी। कोई पुरुष मेरे अंग का स्पर्श नहीं करेगा।"

याकूत उदास होकर कहने लगा—"सुलताना, तब साफ़-साफ़ कहती क्यों नहीं कि याकूत, दिल्ली ही छोड़कर चला जा। जाऊँगा, हाँ जाऊँगा।"

रज़िया बिना उसे कोई उत्तर दिए मसजिद की ओर चली गई। याकूत ने भी उसका अनुसरण किया। मसजिद में पहुँचकर रज़िया उसकी ऊँची दीवार पर चढ़ने का असफल प्रयास करने लगी। याकूत ने उसकी ताड़ना के विरुद्ध उसका हाथ पकड़ अपने कंधों पर चढ़ा लिया, फिर वह सरलता से दीवार पर उचक गई। ठीक उसी तरह, जैसे याकूत उसे घोड़े पर चढ़ाता था।

अपने लाल वस्त्रों में रज़िया ऊँची दीवार पर सहज आकर्षण का केंद्र बन गई। नमाज़ के समाप्त होते ही ऊँची आवाज़ से उसने रहे-सहे लोगों का भी ध्यान अपनी ओर खींच लिया।

रज़िया दोनों हाथ ऊपर कर चिल्लाई— 'हे दीन और ईमानवालों, हे भगवान् का भय करनेवालों, अत्याचारिणी शाह तुर्कान के पाप से निर्भय हो जाओ। यह रज़िया तुम्हें अभय देने आई है। मरते हुए पिता ने इसे अपना उत्तराधिकार देकर अपनी रखेल शाह तुर्कान के क्रोध का लक्ष्य बना दिया। उसने झूठा लालच, घूस और पदवी देकर अनेक सरदारों द्वारा अपने नालायक़ बेटे रुक्नुद्दीन को गद्दी पर बिठा दिया है। उसके कुशासन से राज्य में जो विद्रोह फैला है, वह छिपा नहीं। उसने अनेक प्रजा-वत्सल नागरिकों के साथ मेरे भाई को

भी मरवा डाला है। अभी-अभी मैं फिर उसके भेजे हुए घातक से अपसे प्राण बचाकर लाई हूँ। अब मुझे यह विश्वास हो गया है कि मेरी निस्पृहता को कोई मार नहीं सकता। मैं अवश्य सुलतान के अधूरे कामों को पूरा करूँगी और धर्मप्राण प्रजा की हित-चिंतना में ही अपने चिरकुमारी व्रत को निभाऊँगी। मैं बिना किसी तृष्णा के दिल्ली के राजमुकुट को हाथ में लेकर तलवार की धार पर चल रही हूँ। बिना आपके सहारे के मेरी यात्रा पूरी न होगी। मेरी मदद करो! मेरी मदद करो!"

अनेक लोग चिल्लाए—"हम करेंगे तुम्हारी मदद!"

और बहुत से हाथ उठाकर बोले—"सुलताना रज़िया चिरंजीवी हो!"

पर कुछ ने विरोध किया—"औरत का राज्य शरियत के ख़िलाफ़ है। मार डालो इस धर्मघातिनी औरत को।"

कुछ लोग दीवार पर उसकी ओर बढ़ने लगे तो रज़िया दीवार पर से मसजिद के बाहरी भाग की तरफ कूद गई।

दीवार ऊँची थी। लोगों ने समझा जरूर उसने अपने हाथ-पैर तोड़ लिए होंगे। भीड़ उधर दौड़ी, पर दीवार के नीचे रज़िया का पता ही नहीं था। वह उनके वहाँ पर पहुँचने के पहले ही बुर्क़े में अपने लाल कपड़ों को छिपाकर भाग खड़ी हो गई थी।

१३

उस दिन मसजिद की घटना से राजधानी में समझदार जनता की समवेदना रजिया के साथ हो गई। और प्रांतों में भी राज्यपालों ने केंद्रीय सत्ता की उपेक्षा करनी आरंभ कर दी। तब शाह तुर्कान के उस नालायक बेटे को प्रांतों में फैले हुए विद्रोह को शांत करने के लिए जाना ही पड़ा।

अवध, बदायूँ, मुलतान, हाँसी तथा लाहौर के प्रतिनिधि शासकों ने स्पष्ट रूप से केंद्र के सम्बन्ध काट लिये। जो सरदार और सेनापति उनका दमन करने को भेजे गए थे, वे सब उन्हीं से मिल गये।

जब दिल्ली में ही शाह तुर्कान के विरुद्ध विद्रोह जाग पड़ा तो उसकी तमाम आशाओं पर पानी फिर गया। बहुत से लोग कस्रे-सफ़ेद में चढ़ाई कर उसे मार डालने की योजना बनाने लगे। सरदारों और अमीरों में से जो भी शाह तुर्कान का नाम लेता, वह संकट में पड़ जाता।

रुक्नुद्दीन लाहौर के सूबेदार को पराजित करने गया था। जब दिल्ली ही उसके हाथ से जाने को हुई तो उसकी माता ने रात-ही-रात में साँडनी सवार भेजकर उसे राजधानी की रक्षा के लिए दिल्ली को ही वापस बुला भेजा।

तब मसऊद घबड़ाया हुआ शाह तुर्कान के पास जा खड़ा हुआ और बोला—"महारानीजी, बहुत बुरा समाचार सुनाने के लिए मुझे आना पड़ा है।"

"कहो-कहो, मैं क्या कोई घबड़ानेवाली नारी हूँ?"

"आधी रात के बाद कुछ विद्रोहियों ने आज क़िले पर चढ़ाई करने का निश्चय किया है।"

"क़िले की रक्षा के लिये रुक्नुद्दीन क्या ऐसा अनजान है? वह पर्याप्त सेना यहाँ छोड़ गया है।"

"बाग़ियों ने उस सेना को अपने पक्ष में कर लिया है। इसलिए महारानी जी, आप मेरी बात मानें तो तुरंत ही कस्रे-सफ़ेद को ख़ाली कर दें। नहीं तो केवल भगवान् जानते हैं, यदि आपको उन्होंने क़ैद कर लिया तो क्या होगा?"

अब घबड़ाकर शाह तुर्कान बोली—"पर मैं यहाँ छोड़कर जाऊँ जाऊँ कहाँ?"

"अगर आपको मेरा विश्वास है तो चलिए मेरे साथ। मैं आपको ऐसी जगह ले चलूँगा, जहाँ कोई आपकी छाया को भी न छू सकेगा।"

शाह तुर्कान के ऊपर मानो बिना बादल के बिजली टूट पड़ी। वह निराश स्वर में बोली—"मेरे यहाँ जो नाते-रिश्तेदार, नौकर-चाकर हैं ?"

"वे अगर उनका सामना न करें, हाथ जोड़कर उनकी शरण में चले जायँ, तो उनका बाल भी बाँका न होगा। प्रजा का शत्रु सिर्फ वही है जो उनकी इच्छा के विरुद्ध राजगद्दी पर बैठना चाहता है।"

"मेरी धन-संपत्ति, कपड़े-आभूषण इत्यादि का क्या होगा ?"

"अपने प्राण और अपनी स्वतन्त्रता से बढ़कर संपत्ति और क्या हो सकती है ?"

"बहुमूल्य चीज़ें तहखानों में छिपा देने में मेरी मदद करो।"

"इस समय, समय से अधिक बहुमूल्य चीज़ और कुछ नहीं है। जो लोग यहाँ रहेंगे, उन्हें समझा दीजिए। मेरे साथ चलिये।"

"किसी को कुछ न समझाऊँगी। वे अपनी बुद्धि से काम करें। तुम मुझे कहाँ ले जाओगे ?"

"जिधर भी सुरक्षित मार्ग मिल जाय।"

"बुर्क़ा पहन लूँ ?"

"नहीं, उससे भी शंका उभर सकती है।"

मसऊद ने शाह तुर्कान को मरदों के कपड़े पहनाए। उसके नकली दाढ़ी-मोछ लगाकर लंबे बालों को पगड़ी से बाँधकर छिपा दिया। उसने उसके एक हाथ में भिक्षा का पात्र दिया और दूसरे में लाठी।

"आँखे बंद कर, मेरा हाथ पकड़ मेरे सहारे चलो।"

उसी प्रकार चलने लगी वह। मसऊद ने उसका सारा मोह तोड़ दिया। मसऊद के पीछे-पीछे अन्धे भिखारी के रूप में चली वह उस तामसी रात्रि में दिल्ली की सूनी गलियों की राह। मसऊद अपने मन में समझने लगा—'क्या यह निर्दोष कुतुबुद्दीन को अन्धा बना देने का प्रायश्चित नहीं है ?"

बस्ती के बाहर निकल आने पर महारानी ने पूछा—"मसऊद, तुम कहाँ ले जा रहे हो मुझे ?"

"दूर, संकट से बहुत दूर !"

"कहाँ ?"

"ग़रीब मज़दूर की झोपड़ी में।"

"झोपड़ी में ?"

"हाँ-हाँ, महारानीजी, जहाँ बड़ी-बड़ी आशायें, ऊँची-ऊँची कामनाएँ, ऊँचे आकाश के ग्रह-नक्षत्रों से बातें नहीं करतीं।"

"वहाँ सुरक्षित रह सकूँगी क्या ?"

"क्यों नहीं ? महत्त्वाकांक्षा ही मनुष्य की शत्रु है। जहाँ वह नहीं, वहाँ अपना बिगाड़ कर सकनेवाला और कौन है ?"

"कितनी दूर ! कहाँ निकल आए हैं हम ?"

पृथ्वीराज के समय के एक मन्दिर के पास आ गए थे वे। मन्दिर तोड़ दिया गया था। उसके पत्थरों से किसी की क़ब्र के निर्माण में मदद ली गयी थी। एक पीपल के पेड़ के नीचे, दूर क्षितिज की क्षीण नीलिमा में दिखाई देनेवाले कुछ सिपाहियों के सिर और उनके भालों पर मसऊद की दृष्टि खिच गई थी। उसपे शाह तुर्कान को कोई उत्तर नहीं दिया।

सशस्त्र सिपाहियों का एक पूरा दस्ता उसी ओर को आ रहा था। मसऊद ने कहा—"आखें बन्द ही रखिए महारानीजी।" मसऊद पास ही कहीं छिप गया।

सिपाहियों ने शंकित होकर उस अन्धे भिखारी को घेर लिया।

शाह तुर्कान घबड़ाकर चिल्लाई—"मसऊद !"

मसऊद से कोई उत्तर नहीं मिला।

एक सिपाही ने पूछा—"तुम कौन हो इस अँधेरी रात में, इस सुनसान बीहड़ में ?"

'एक ग़रीब, अन्धा भिखारी।'

'आँखें तुम्हारी अन्धी हो सकती हैं, पर स्वर तो तुम्हारा बड़ा मधुर है।"

अब भेद खुल जाने के भय से शाह तुर्कान आँखें खोल एक ओर को भागने लगी। एक सिपाही के हाथ उसकी पगड़ी का छोर आया, दूसरे के हाथ उसकी दाढ़ी। जिससे उसका असली रूप प्रकट हो गया।

पगड़ी के खिच जाने से उसका जूड़ा खुलकर कन्धों पर बिखर गया और दाढ़ी के उखड़ आने से उसके भीतर की नारी प्रकट हो गई। वह दोनों हाथों से अपना मुँह ढक फिर एक ओर को भागने लगी।

सभी सिपाहियों ने उसे चारों दिशाओं से घेर लिया। एक ने कहा– "अरे इस अन्धे भिखारी ने तो हमको ही अच्छा अन्धा बना दिया था।"

"दाढ़ी-मोंछ के भीतर सुन्दरी नारी !"

मुँह पर से अपने हाथ हटाओ तुम्हें देखें तो सही। कौन हो तुम ?"

शाह तुर्कान ने हाथ नहीं हटाया। बीच में खड़ी-खड़ी चिल्लाने लगी– "मसऊद, ओ मसऊद ?"

"कौन है यह मसऊद ?"

"मेरा नौकर।"

"आपके कपड़ों के भीतर छिपाकर पहना गया यह जड़ाऊ हार हमें दिखाई दे गया। आप किसी बड़े घर की जान पड़ती हैं। इस आधी और अँधेरी रात में एक नौकर के साथ आप क्यों भाग आई हैं ?"

इसका उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

'हाथ हटाकर हमें तुम्हें पहचान लेने दो। नहीं तो फिर अगर हमारे हाथ तुम्हारे ऊपर बल-प्रयोग करने के लिए विवश हो गए तो हमें कुछ दोष न होगा।" उन सिपाहियों का प्रधान बोला।

वह हाथ जरा हटाकर बोली –"एक विपत्ति में पड़ी नारी के साथ तुम छेड़-छाड़ करते अच्छे नहीं लगते।"

"छेड़-छाड़ नहीं, हम यहाँ अपना कर्त्तव्य निभाने को खड़े हैं। हमें दिल्ली के इस प्रवेश पर देखना है विद्रोहियों के आवागमन को।"

"जिस पर संशय हो जाय उसे गिरफ्तार कर लेने की राजाज्ञा है हमारे

पास। आँखोंवाली होकर तुम अन्धी बनी हो, नारी होकर भिखारी का वेश और इतना बहुमूल्य हार तुम्हारे गले में ! भला इन संशयों को तुम कैसे मिटा सकती हो ?"

"इसलिये सच-सच बता दो तुम कौन हो ?"

"पर पहले मैं सुनना चाहती हूँ, क्या तुम सुलतान रुक्नुद्दीन के सिपाही हो ?"

"उसके पाप के लिए लड़ने से हमने इनकार कर दिया।"

इतने ही में एक सिपाही मसऊद को पकड़कर ले आया और प्रधान से बोला—"यह पीपल के पेड़ पर चढ़कर छिप गया था, पर मैंने इसे देख लिया और पकड़कर बाँध लाया हूँ।"

"क्यों रे कौन है तू ?"

"इन्होंने कुछ नहीं बताया ?" मसऊद बोला।

प्रधान को याद आया—"क्या तेरा ही नाम मसऊद है ?"

"किसने बताया ?"

"इन्होंने ही और अब तुम्हें कठिनाई से बचने के लिए बता ही देना चाहिए कि ये कौन हैं ?"

मसऊद ने पूछा—"क्यों महारानीजी, सच-सच बता दूँ ?'

प्रधान बोला आश्चर्य के साथ—"कौन महारानीजी ?"

"हाँ वही, जिन्होंने राजकुमार कुतुबुद्दीन की आँखें निकलवा दीं और फिर उसका वध करवा दिया।" मसऊद बोला।

"क्यों रे नमकहराम, मेरे दुश्मनों की उड़ाई हुई इस झूठ का तू समर्थन करता है ?"

प्रधान ने कहा—'हम तो समझ रहे थे, यह हार चुराकर लाई हैं कहीं से। यह तो इसकी स्वामिनी ही निकलीं।"

मसऊद बोला—"स्वामिनी नहीं हैं। यह हार असल में महारानी हमीदा का था। सुलतान पर जब इन्होंने अपना जादू चलाया तो इन्होंने यह हार उनके

गले से निकलवा लिया और उन्हें निकलवा दिया कस्रे सफेद के राज-भवन से।"

अब तो अनेक सिपाही बोल उठे—"तो यह महारानी शाह तुर्कान ही हमारे सामने खड़ी हैं ?"

"आपके ऊपर राजधानी में अनेक रक्तपात के आरोप हैं। आपने सुलताना रज़िया के प्राण लेने की चेष्टाएँ की हैं। अब आपको राजधानी में न्याय के लिये ले जाया जायगा।"

शाह तुर्कान ने वड़ी क्रूर दृष्टि मसऊद पर की—"तू मुझे इस तरह धोखा देकर लाया बेईमान !"

"लाया तो ईमानदारी ही से था, पर भगवान् के इस प्रबन्ध का पता किसे था ? एक बात तो समझिए महारानी, क्या वहाँ कस्रे सफ़ेद में आप सुरक्षित रहतीं ?" मसऊद ने कहा।

सिपाहियों के प्रधान ने कहा—"मसऊद के बन्धन खोल दिए जायँ और अब इन महारानीजी के हाथों की शोभा बढ़ाई जाय।"

१४

लाहौर के विद्रोहियों से मन-ही-मन डरा हुआ था रुक्नुद्दीन। उसके साथ जो अनाड़ियों की सेना गई थी, उसका भी यही हाल था। उसमें नैतिक बल की कमी थी। क्या नैतिकता ही हमारे मनोबल की चालिका नहीं है, जिस प्रकार मनोबल हमारे शरीर की शक्ति है।

वे सिपाही भाड़े के टट्टू थे। लूट-पाटकर अपनी पाशविक मनोवृत्तियों की तृप्ति के लिए वे उस नालायक़ सुलतान के साथ हो लिये थे।

लाहौर से बीस कोस की दूरी पर जब पड़ाव डालकर रुक्नुद्दीन नृत्य-गीत की सभा में शराब पीकर मन की चिंताओं को भुला रहा था। तभी शाह

तुर्कान का संदेश लिए साँडनी-सवार वहाँ जा पहुँचा। आधी रात का समय होगा।

सदर फाटक के खेमे पर का प्रहरी बोला—"नहीं जा सकते अंदर। देखते नहीं, सुलतान को किसी से बात करने की फुरसत ही नहीं है।" उसने तलवार बढ़ाकर साँडनी-सवार का मार्ग रोक दिया।

दूत ने आज्ञा-पत्र दिखाकर कहा—"राजमाता का ज़रूरी संदेश लेकर आया हूँ। ऊँटनी को थोड़े ले जा रहा हूँ अंदर। वह देखो, वह चर रही है।"

"राजमाता कोई नहीं है यहाँ। गोरी, रसीली, छबीली, सुन्दरी नाच रही हैं। दूर ही से देख ले। नहीं तो यहीं से सुन ले घुँघुरू, गीत और बाजों की आवाजें आ रही हैं न ? अंदाज़ लगा ले, क्या हो रहा है, बहरा तो नहीं है ? जा लौट जा, कहीं तेरी ऊँटनी किसी के खेत में न चली जाय उजाड़खाने। एकदम सुबह भी न आ जाना। सुलतान देर में सोकर क्यों उठें सूरज के साथ ?"

"अरे, तू होश में भी है कुछ ? दिल्ली से आ रहा हूँ शाही फ़रमान लेकर।"

"दिल्ली से आ रहा है तो भीगी बिल्ली बनकर क्यों खड़ा है यहाँ पर ? घुस जा महफिल के अन्दर। कोई रोके भी तो उसकी सुनना नहीं।" एक दूसरा बोला।

साहस पाकर दूत आगे बढ़ गया। वह ज्यों ही सभा में घुसने को था कि एक मशालची ने उसका हाथ खींचकर कहा—"अरे गधे की पूँछ ! तेरी दाढ़ी को मशाल दिखा दूँगा। आँखें नहीं हैं क्या तेरी ? कितना बढ़िया नाच चल रहा है। उसके बीच में कहाँ कूदा जा रहा है ? कुछ भी दया-मया नहीं है तेरे मन में ? निकल बाहर !"

भीतर से सिपहसालार की नज़र पड़ गई इस पर। वह था बशीरुद्दीन। आयु की वृद्धि ने उसकी समझ भी बढ़ा दी थी। वह शाह तुर्कान के पुराने

उपासकों में से था। इसी से प्रधान सेनापति बना दिया गया था। उसी के संरक्षण में महारानी ने अपने राजकुमार को विद्रोहियों के बीच में भेज देने का साहस कर दिया था।

दूत के हाथ में आज्ञा-पत्र देखते ही सेनापति समझ गया, कोई आवश्यक संदेश है। उसने तुरन्त ही हाथ उठाकर सभा भंग कर देने का आदेश दे दिया।

सरंगीवाले का गज ताल के बीच ही में रह गया और तबलची की थाप आधी मात्रा ही में। नाचनेवाली के होठों में गीत टूट गया और नृत्य-चपल चरणों में नाच का तोड़ा !

सिपहसालार ने दूत के पास आकर पूछा—"दिल्ली से कोई परवाना लाए हो ?"

राजदूत ने दौड़कर सिपहसालार की सेवा में अभिवादन किया और दोनों हाथों से उन्हें राज-पत्र भेंट किया।

बशीरुद्दीन पत्र खोलकर पढ़ने लगा। रुक्नुद्दीन खीझकर कहने लगा—"सिपहसालार, पत्र तो जब चाहो, तभी पढ़ा जा सकता है, लेकिन इतना बढ़िया नाच क्या हर समय देखा जा सकेगा ? भगवान् की माया ! आपके बाल भी न जाने क्यों रंग बदलते जा रहे हैं ?"

सिपहसालार ने उसके शब्दों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उस पत्र के लेख ने उनका सारा मन खींच लिया था। उसे रुक्नुद्दीन की तरफ बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—"बड़ा बुरा समाचार है।"

रुक्नुद्दीन उसकी उपेक्षा कर बोला—"सिर्फ दो शब्दों में सुना दीजिये मुझे। आपने पढ़ ही लिया। मतलब सिपहसालार का ही है।"

बशीरुद्दीन ने कहा—"राज्य की बातें सबके सामने नहीं कही जातीं, पहले इन नाचने-गानेवालों को बर्खास्त करो।"

नृत्य-बाला को इसमें अपने अपमान की गंध मिली। वह कहने लगी—"हम आपके दल में के नहीं हैं। दस कोस से चलकर बैलगाड़ी में आए हैं।

हमारा पूरा गाना सुनकर ही जाना होगा। नाच के बीच से ही हमें तोड़कर रख देना, हमारी बड़ी वेइज्ज़ती है। इससे हमारे ऊपर बड़ा दाग़ लग जावेगा। फिर कोई भी हमें अपने यहाँ नहीं बुलावेगा।"

सरंगीवाला बोला–"सरकार, रागिनी को अधूरा ही छोड़ देने से उसके हाथ-पैर टूट जाते हैं।"

तबलची ने तबले में थाप मारकर कहा–"मजूरी के ऊपर इनाम मिलना चाहिए। रात के असमय का विचार कर आने-जाने का दूना भाड़ा भी।"

नर्त्तकी ने उसे तर्जनी दिखाकर उस पर कुदृष्टि की।

सिपहसालार ने कोषाध्यक्ष को संकेत कर कहा–"इन लोगों को ले-दे कर बिदा करो।"

नर्तकी रुक्नुद्दीन के आगे हाथ जोड़ विनीत हो गई। उसने अपने हाथ से एक अँगूठी निकालकर उसकी उँगली में पहनाते हुए कहा–"दिल्ली आकर अपना नाच-गीत पूरा कर जाना। फिर और भी समझ लिया जायगा।"

सिपहसालार ने आज्ञा दी–"ख़ेमे उखाड़ो, बिस्तरे लपेटो, सारा साज़ो-सामान बाँधकर घोड़ों और गाड़ियों में लादा जाय। अभी रात ही में दिल्ली को कूच करना है। सिर्फ सुलतान का ख़ेमा सबके अन्त में बाँधा जायगा। अभी वहाँ दरबार लगेगा।"

बड़े वाद-विवाद के बाद कोषाध्यक्ष ने नाच-गीत के कलाकारों को रात ही में बिदा कर दिया।

सेनापति दिल्ली से आए हुए साँडनी-सवार के साथ रुक्नुद्दीन के खेमे में जाकर बोला–"दिल्ली में अधिकांश सरदार और अमीर रज़िया के पक्ष में हो गये हैं। वे किसी समय भी हमारे विरुद्ध युद्ध छेड़ सकते हैं। महारानी ने फौरन् ही सारा दल लेकर दिल्ली लौट आने को लिखा है।"

रुक्नुद्दीन जँभाई लेते हुए कहने लगा–"अच्छी बात है। सबको सारे सामान के साथ दिल्ली भेज दीजिए अभी। मैं ज़रा नींद पूरी कर लूँ। हम और आप सुबह चले चलेंगे, क्यों ठीक है न?"

बशीरुद्दीन ने सुलतान के इस प्रस्ताव पर बड़ा क्षोभ प्रकट करते हुए कहा–"सुलतान, आपके मुँह से यह सुनना क्या है ? आप सल्तनत के मालिक हैं और मैं सेनापति। सिपाहियों की शक्ति पर आपका राज्य ठहरा हुआ है। सिपाहियों में एकता पैदा कर मैं उन्हें शक्तिमान् बनाता हूँ, हमें उनके आगे रहना है। हम दोनों ही जब उनके पीछे रह गए तो सैनिकों में शक्ति भी उत्पन्न हो गई और ठहर गया आपका राज्य भी !"

तभी पहरे पर के सिपाही ने विनीत प्रवेश के साथ कहा- "सरकार, महावत आया है।"

सेनापति ने उत्तर दिया--"आने दो।"

महावत आकर बोला--"हुजूर, हाथी तैयार हैं।"

सेनापति ने कहा-"ठीक है, ले आओ। हुज़ूर अभी रवाना होंगे दिल्ली को।"

रुक्नुद्दीन बोला-"खजांची से कह दो। हमारे साथ वह भी जायगा।"

सुलतान की आज्ञा लेकर महावत चला गया।

सिपहसालार ने साँडनी-सवार को लिखकर पत्र का जवाब दिया। ज़बानी भी कहा-"तुम फ़ौरन् अभी जाकर महारानीजी को खबर दो, हम लोग रात ही में दिल्ली के लिए कूच कर रहे हैं। शीघ्र ही वहाँ पहुँच जावेंगे।"

साँडनी-सवार उसी समय बिदा हो गया। बशीरुद्दीन अपनी सेना की तैयारी के लिए चला गया।

सुलतान रुक्नुद्दीन ने प्रहरी को बुलाकर कहा--"मेरे खेमे के भीतर अब किसी को न आने देना। महावत हाथी को लेकर जब आवे तो कह देना बाहर ही ठहरकर मेरी आज्ञा की राह देखे। मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं जान पड़ती।"

"हकीम साहब को बुला लाऊँ ?"

"नही, थोड़ी देर सो लेने पर ठीक हो जावेगी।"

"सकीना दासी को बुला लाऊँ ?"

"नहीं, उसकी भी ज़रूरत नहीं ।"

"सरकार, अगर सिपहसालार आवे तो ?"

"उनसे भी यही कह देना ।"

"यानी आप आराम कर रहे हैं ।"

रुक्नुद्दीन अपने खेमे में बिस्तर पर सो गया । सेनापति उसकी आदत से परिचित था । उसने सकीना दासी को बुलाकर कहा-"हमें अभी दिल्ली को वापस जाना है ।"

"जावेंगे । बाधा ही कौन-सी है ?"

"सुलतान सहमत नहीं हैं। तुम उन्हें राजी कर सकती हो। वह तुम्हारा कहना मान ही लेते हैं ।" सेनापति ने उसे आवश्यक स्थिति समझा दी ।

"मैं अवश्य चेष्टा करूँगी ।" कहती हुई वह रुक्नुद्दीन के खेमे की ओर चली ।

पर प्रहरी ने उसे रोक लिया । उसके कानों में सुलतान की आज्ञा प्रतिध्वनित हो उठी—"मेरे खेमे के भीतर अब किसी को न आने देना ।"

सकीना ने उसे ऊँच-नीच समझाते हुए कहा—"सुलतान के शराब के नशे को आज्ञा नहीं कहा जा सकता और उसके ऊपर उन्हें नींद का नशा है। तुम्हें समझ लेना चाहिए । दिल्ली में बलवा हो चुका है और तुम सुलतान को नींद में ही अचेत रहना चाहते हो ? मुझे सेनापति ने उन्हें जगा देने के लिए भेजा है । अगर वह ठीक समय से राजधानी में नहीं पहुँच सके तो फिर कभी नहीं पहुँच सकेंगे ।"

तभी हाथी लेकर महावत भी वहाँ आ गया । प्रहरी ने उसे वहीं ठहरा दिया और सकीना के भीतर जाने का मार्ग छोड़ दिया ।

सकीना ने धीरे से रुक्नुद्दीन के पैर को हिलाकर कहा--"सुलतान, आपके दिल्ली को कूच करने की घड़ी आ गई । महावत हाथी को लेकर आ गया। सेनापति…"

वह नींद में ही बड़बड़ाया—"हाँ-हाँ, सेनापतिजी, तुम अपनी तलवार नंगी कर नचाओ, जैसे वह नाच रही थी।"

सकीना ने उसका नशा तोड़ने के लिए फिर उसके पैर हिलाए। रुक्नुद्दीन ने खीझकर लात खैंची, जोर से मारी उसकी नाक में। उससे रक्त निकलने लगा। दासी रोती-चिल्लाती बाहर को भागी। नाक पोंछते-पोंछते उसकी सफ़ेद चादर रँग गई। बशीरुद्दीन को दोनों हाथों से चादर दिखाकर बोली—"मेरी यह हालत कर दी और वह उठने का नाम नहीं लेते।"

सेनापति के क्रोध उमड आया। वह तलवार उठाकर उसी समय तंबू की ओर चला गया। उसकी राह रोकनेवाले प्रहरी के एक चाँटा मारकर उसने भूमि पर गिरा दिया। हाथ पकड़कर सेनापति ने उसको उठा दिया। गरजकर बोला—"शत्रु सिर के ऊपर खड़े हैं और तुम्हें नींद सूझी है। बेशर्मी की हद हो गई!"

"सिर्फ एक ही झपकी सेनापति! मैं बिलकुल तैयार हूँ। चलिए।"

सेनापति ने उसे हाथ पकड़ खेमे से बाहर निकालते हुए कहा—"यही तुम्हारा हाथी है। इस पर चढ़ जाओ। महावत, बिठा दो हाथी को।"

"हाँ-हाँ, सेनापतिजी, वैसे शत्रु कोई भी नहीं है। आप तलवार निकाल कर दुश्मन को दोस्त बना लेते हैं तो मैं भी कुछ और चीज़ दिखाकर उसे अपने वश में कर लेता हूँ। आपको रोष में आना नहीं चाहिए। उससे हमारी शक्ति चली जाती है। ज़रा हँसकर कहिए, मैं आपके तमाम हुक्म मानने को तैयार हूँ।"

सेनापति को हँसी आ गई। शीघ्र ही गंभीर होकर बोले—"ज्यादा बको मत। शराब ने तुम्हारी सारी बुद्धि चाट ली।"

"आप सेनापति हैं। सेना के आगे-आगे चलने का काम आपका ही है। मैं फौज के अंत में! यही क़ायदा मुझे पसंद है, इसीलिए मैंने एक झपकी ले ली थी कि सेना के अंत में मैं आसानी से पहुँच जाऊँगा।"

"नहीं, सेना के अन्त में नहीं रहोगे तुम।"

"भला, क्यों नहीं? एक सिरे पर आप और दूसरे सिरे पर मैं। तभी

तो फौज दोनों के भय से ठीक-ठीक चलेगी। नहीं, इधर-उधर बिखर गई तो फिर कैसे काम चलेगा ?"

"नहीं, मेरे घोड़े के बाद तुम्हारा हाथी चलेगा।"

"अच्छी बात है. आपकी राय रखनी ही पड़ेगी। पर मेरे हाथी में दाहनी तरफ मेरे ख़जाची का होना ज़रूरी है और बाईं तरफ सकीना। कोषाध्यक्ष की मदद से मैं ग़रीब प्रजा की भूख दूर करूँगा और सकीना मेरी प्यास मिटा देगी।"

"सकीना की अब कोई आशा न करो। वह अब आपकी सेवा छोड़कर जा रही है।"

"नहीं, वह ऐसी मूर्ख नहीं है।"

"तुमने उसकी नाक तोड़ दी।"

"मैं उससे माफी माँग लूँगा और उसकी नाक में हीरों से जड़ी नथ पहना दूँगा। उसे मेरे पास भेजिए तो सही।"

"पहले तुम दिल्ली चलने की तैयारी तो करो।"

"महारानी शाह तुर्कान की शपथ, सेनापतिजी, अब मैं चौकन्ना हो गया। अब सो नहीं सकता। आप सकीना को भेजिए तो सही। मै उसे राजी कर लूँगा और वह कर लेगी मुझे जागरूक !"

शाह तुर्कान का नाम सुनते ही सिपहसाला पुलकित और रोमांचित हो गया। महारानी की हज़ार-हज़ार स्मृतियाँ साकार होकर उसके अन्तर नेत्रों में नाचने लगीं। वह बोला—"सुनो राजकुमार, जब सिर पर आ पड़ती है तो फिर ढील-ढाल किस काम की ? तुम अपना तँबू बंधवाकर टट्टुओं में लदवाओ मैं अभी सकीना को किसी तरह राज़ी कर तुम्हारे पास भेजता हूँ।"

"भेजिए, भेजिए, उसी के सहारे मैं सुलतान बनने का साहस किये हुए हूँ। वह मेरी बाईं भुजा है तो दाहनी भुजा ख़जांची को भी तो भेजिए।"

अब सेनापति बशीरुद्दीन को विश्वास हो गया कि सुलतान सचमुच में जाग गया। उसने सकीना को राज़ी कर भेज दिया रुक्नुद्दीन के पास।

"सकीना तंबू के एक कोने में सुलतान की ओर पीठ कर खड़ी हो गई। रुक्नुद्दीन ने उसके कन्धे पकड़ अपनी ओर फिरा लिया।

"हटो, बहुत बुरे हो तुम।"

"माफी चाहता हूँ।"

"झूठे हो।"

"नींद में पैर पड़ गया तो वह झूठ कैसी ?"

"सुलतान हो जाने पर तुमने विवाह की आशा दी थी मुझे।"

"वादा अब भी कर रहा हूँ। राज्य में चारों तरफ बग़ावत फैल रही है। शांति हो जाने पर ज़रूर तुमसे विवाह कर लूँगा।"

"तुम्हारे वादों का विश्वास कैसे हो ?"

"विश्वास के लिए लो, यह हीरों-जड़ी अँगूठी तुम्हारी उँगली में पहनाता हूँ।" कहते हुए रुक्नुद्दीन अपनी उँगली से अँगूठी निकालने लगा।

अँगूठी उँगली में न पाकर चिल्लाया—"अंगूठी कहाँ गई ?"

"तुम्हारी झूठ अभी खुल गई। लाओ, कहाँ है अँगूठी ?"

"सकीना, वह अँगूठी मैंने तुम्हारे लिए ही रक्खी थी। ज़रूर कहीं गिर पड़ी ! झूठ क्यों बोलूँ मैं ? कहाँ गिर पड़ी ? रात मेरी उँगली में ही थी वह। मेरी शय्या पर तो देखो।"

सकीना उधर देखने गई। प्रहरेवाले ने आकर कहा—"सरकार, वह रात की नाचनेवाली आई है। भेज दूँ उसे ?"

"ज़रूर !"

सकीना शय्या पर से लौटकर बोली—"नहीं, वहाँ कुछ नहीं है।"

"रात में तुम कहाँ थीं ?"

"मैं दूसरी दासियों के साथ सो गई थी, बग़ल के तंबू में।"

नर्तकी के आते ही सकीना ने घृणा-पूर्वक मुँह फिरा लिया। नर्त्तकी बोली—"सरकार..."

रुक्नुद्दीन बीच ही में बोल पड़ा—"तुम ख़ूब आईं। रात मुझसे भूल हो

गई। मैं शराब के नशे में था।" फिर उसने सकीना का मुँह अपनी ओर फिरा-कर कहा—"मुझे याद आ गई ! वह मिल गई !"

नर्तकी बोली—"हाँ, सरकार ! आपसे भूल हो गई। आपने मुझे अपनी ओर से इनाम दिया, लेकिन मेरे उस्तादजी को कुछ भी नहीं दिया। यह कैसे संभव हो सकता है। बिना उनको कुछ मिले, मैं आपसे कुछ नहीं ले सकती।"

"हाँ, चाहिए तो यही। अँगूठी इधर दो मुझे। देखूँ तो सही, कौन-सी है ? नर्तकी ने अपनी उँगली उधर बढ़ाकर अँगूठी दिखाई। रुक्नुद्दीन ने झट से अँगूठी निकाल ली उसकी उँगली से और सकीना की उँगली में पहनाते हुए कहा—"यह इनकी अँगूठी है। मुझसे जो भूल हो गई, उसी को ठीक करने तुम अपने आप यहाँ चली आईं। बड़ी कृपा, बड़ी कृपा !"

"सरकार, इनाम में दी गई चीज़ को फिर लौटा लेना दिल्ली के सुलतान की शोभा नहीं है।"

"यह तो तुम ठीक ही कह रही हो और तुम्हारी यह बात भी ग़लत नहीं है कि बिना तुम्हारे उस्ताद को कुछ मिले तुम्हें कुछ दिया जाय, इसलिए तुम्हें भी अब कुछ नहीं मिलेगा। मैं तुम्हें अभी से अगली ईद पर उस्ताद के साथ दिल्ली आने को निमंत्रित करता हूँ। तब तुम दोनों को अच्छा इनाम दे दिया जावेगा। अब जाओ, हमें ज्यादा बात करने की फुरसत नहीं। हमें अभी दिल्ली को लौट जाना है।"

नर्तकी कुछ बड़बड़ाने लगी थी। रुक्नुद्दीन ने प्रहरी को इशारा किया। उसने उसे रास्ता दिखाते हुए कहा—"सुलतान के साथ ज्यादा हुज्जत ठीक नहीं। चलो बाहर; नहीं तो तुम्हें हाथपकड़ कर निकाल दिया जायगा।"

नर्तकी अपना-सा मुँह लेकर चली गई। प्रहरी भी पीछे-पीछे।

सुलतान ने सकीना के कन्धे पर हाथ रखकर पूछा—'अब तो हुआ न तुम्हें विश्वास ?"

महावत ने आकर कहा—"हुज़ूर हाथी तैयार है।"

प्रहरी प्रवेश कर बोला—"सरकार, इस तंबू का सामान बाँधनेवाले और उखाड़नेवाले मज़दूर आ गए।"

"खज़ांची नहीं आया ?"

"आ गया ।"

"अर्शाफियों का संदूक़ ?"

"वह भी सरकार ।"

'कुलियों को बुलाकर इस मयख़ाने को भी हौदे में लादा जायगा पहले। एक तरफ शराब के बर्तन, दूसरी ओर अर्शाफियों का संदूक़ !"

उनके लाद दिए जाने पर सुलतान ने सकीना की कमर में हाथ रखकर कहा—"चलो सुंदरी !"

एक तरफ खज़ांची और दूसरी ओर सकीना को हाथी में बिठा कर रुक्नुद्दीन दिल्ली के विद्रोह का दमन करने को चले । सुलतान को पूरा विश्वास था, सेनापति का शौर्य और सेना का युद्ध-कौशल सफल हो चाहे नहीं, वह अपनी युक्ति से विद्रोहियों के हृदय पर विजय प्राप्त कर ही लेंगे । हाथी चल पड़ा ।

सकीना रह-रहकर अँगूठी के हीरे को देख रही थी । सुलतान बोला— "अब तुम इस अँगूठी पहने गोरे-गोरे हाथ से मुझे एक प्याला...."

सकीना ने वाक्य पूरा होने से पहले ही सुलतान की इच्छा पूरी कर दी शराब पीकर वह बोला—"सुंदरी, दिल्ली में हमारे दुश्मन हो सकते हैं. लेकिन दोस्तों की क्या कुछ कमी है ? राजमुकुटधारी सिर दोस्तों और दुश्मनों की घटती-बढ़ती से कभी नहीं घबराता । हाथी झूमता हुआ चला जा रहा है, मैं झूमता हुआ तुम्हारे संपर्क में । अब सो भी जाऊँ तो भी आगे-ही-आगे बढ़ा जा रहा हूँ, अपने सिर को तुम्हारे सहारे टिका लेने में क्या हानि है ?"

"कुछ भी नहीं ।"

"हाथी की चाल में मेरे सो जाते कोई रुकावट तो नहीं पड़ेगी खज़ांची साहब ?"

"नहीं सरकार ।"

"दिल्ली अभी कितनी दूर है ?"

"तीन दिन की यात्रा पर।"

"कोई परवा नहीं, हमें जल्दी क्या है?"

इसके बाद रुक्नुद्दीन सो गया।

१५

सेनापति बशीरुद्दीन बड़ी तत्परता से सेना को दिल्ली की ओर बढ़ाता गया। जहाँ उसने हर पड़ाव पर उनके भोजन और आराम का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा, वहाँ उसने उन्हें तीसरे दिन दिल्ली पहुँचाने का भी निरन्तर प्रयत्न किया। अपनी बुद्धि से उसने मार्ग के कुछ घुमाव काट दिये, और सैनिकों की चाल को अतिरिक्त वेतन के लालच से तेज़ कर दिया।

सेनापति ने राजमाता को तीसरे दिन दिल्ली पहुँच जाने को लिख दिया था। महारानी की पुरानी मित्रता को वह कच्चे हिसाब से मलिन नहीं करना चाहता था और वह तीसरे दिन जमना पार कर पहुँच गया दिल्ली।

अस्ताचलीय सूर्य की तिरछी किरणों में प्रतिफलित कुतुब की लाट दिखाई देने लगी थी। रुक्नुद्दीन के हृदय में बढ़ता हुआ हर्ष अचानक स्थिर हो गया। सिपहसालार ने जमना पार करने से पहले ही दो घुड़सवार, सेना की वापसी की सूचना देने के लिए शाह तुर्कान के पास भेज दिए थे। फिर भी उनके स्वागत के लिए नगर में कोई समारोह नहीं दिखाई दिया, नहीं कहीं पर बाजे-गाजे का ही प्रबन्ध था।

यह उदासीनता सभी को खलने लगी। घुड़सवार भी नहीं लौटे, पर कहीं विरोध की भी कोई सूचना नहीं दिखाई दी। इसी से कुछ आशा बँधी हुई थी।

शराब में उन्मुक्त रुक्नुद्दीन दिल्ली की गलियों से जाते हुए चिल्लाने लगा—"मैं आ गया! दिल्ली का सुलतान रुक्नुद्दीन आ गया! प्रांतों में विद्रो-

हियों का साहस तोड़कर आ गया। फिर क्यों न मैं अपनी राजधानी में अर्शाफियों लुटाकर प्रजा को प्रसन्न करूँ ?"

अब तो चारों ओर से बड़ी भीड़ आकर जमा हो गई सुलतान के मार्ग में। सुलतान चिल्लाया—"सकीना, एक प्याला और।"

सकीना ने प्याला आगे बढ़ाया। अब रुक्नुद्दीन ने खजांची से कहा—"अब आप भी तो मेरे हाथों में अर्शाफियाँ रक्खें। नहीं तो प्रजा कहेगी सुलतान झूठे ही हाथ इधर-उधर फेंक रहा है।"

खज़ांची बोला—"सरकार, अर्शाफ़ियाँ कम हैं और अभी महल तक पहुँचने का रास्ता लम्बा है। अर्शाफ़ियाँ एक ही हाथ में दी जा सकेंगी। दूसरा हाथ तो ऐसे ही चलाना पड़ेगा।"

"यही सही, पर तुम भी तो दूसरे हाथ में झूठ-मूठ की अर्शाफ़ियाँ रखते जाओ।"

ऐसा ही किया गया। खज़ांची सुलतान के एक हाथ में इक्की-दुक्की अशर्फी रखता जाता, दूसरे हाथ में कोरा अँगूठा। सुलतान दोनों हाथों से अर्शाफ़ियों की लूट दिखाता।

कुछ दूर चलने पर जब खजांची ने सुलतान के हाथ में कुछ अजीब गोल-गोल-सी-चीज़ रक्खी तो वह बोला—"खज़ांची, यह क़ैसी अशर्फी है ?"

"सरकार, अर्शाफियां तो सब समाप्त हो गईं !"

"फिर यह क्या है ?"

"रेवड़ी है सरकार।"

"नहीं, मैं इस तरह अपनी प्यारी प्रजा को धोखा नहीं दूंगा। अशर्फी के बदले रेवड़ी को सड़क पर देखकर दिल्ली के सुलतान की क्या इज्ज़त रह जायगी ? खजांची, तुम्हें सोचना चाहिए था।"

"तो सरकार, इस हाथ को भी आप ऐसे ही खाली चला दीजिये जैसे आप बायाँ हाथ चला रहे हैं।"

"यह दोहरी ठगी, मेरी प्रजा कैसे सहन कर लेगी ? सकीना, दो तो एक प्याला। शायद उसके नशे में...."

"शराब सब समाप्त हो गई सुलतान।" सकीना ने एक सुराही उलटकर भी दिखा दी।

"खज़ांची, अब क्या होगा?"

खज़ांची ने जवाब दिया—'प्याला ऐसे ही ख़ाली-का-ख़ाली मुँह में उलट लीजिये जसे आप झूठ-मूठ की अशर्फ़ियाँ लुटा रहे हैं।"

"बड़े बदतमीज़ हो ख़ाज़ांची तुम। क्या नहीं जानते अब मैं अपने राजसिंहासन के निकट आ गया हूँ। चाहूँ तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग करने की आज्ञा भी दे सकता हूँ।"

"सरकार, आप ही क्या यह नहीं कहते कि यह सारा संसार केवल एक विचार है और एक सपना है।"

"कहता हूँ, और उसी समय कहता हूँ जब मेरा प्याला भरा रहता है और मुट्ठियाँ भारी, क्यों सकीना!"

"हाँ, राजकुमार! सब कुछ हो जायगा। अब तो हम राजभवन के निकट आ ही गए।"

वे चालीस तुर्की सरदार, जिनका सहारा पाकर शाह तुर्कान के स्वप्नों ने आकार प्राप्त किए थे। उनका प्रधान करीमशाह घोड़े पर चढ़कर सामने आया। उसके पीछे शेष उनचालीस सरदार सशस्त्र अपने-अपने घोड़ों पर से उस पर प्रकाश डाल रहे थे।

"प्रधान ने अपना घोड़ा सेनापति के घोड़े से भिड़ाकर कहा—"बशीरुद्दीन!"

"जी सरकार!" सेनापति उसके प्रभुत्व से प्रभावित होकर बोला।

"तुम्हें घोड़े से उतर जाना पड़ेगा।"

"सबब बता दीजिए। उतर जाऊँगा।"

"हम लोगों ने एका कर शाह तुर्कान को वन्दी कर लिया है। और अब उसके शराबी बेटे की बारी है। और यदि तुमने कुछ खींचातानी की तो तुम्हारी भी।"

"नहीं-नहीं ! मेरी क्यों ? मैं उतर गया अभी घोड़े पर से ।" बशीरुद्दीन घोड़े की पीठ से कूदकर भूमि पर हो लिया ।

करीमशाह ने घोड़े पर से हाथ में तलवार तानकर उसे ललकारा—"वह नालायक़ छोकरा रुक्नुद्दीन कहाँ है ?"

"हाथी पर आ रहा है, वह सामने ।" बशीरुद्दीन ने संकेत से दिखाया।

"उसे भी अपनी माता के साथ क़ैद में रहना पड़ेगा । तुम जाकर उसे अभी हाथी पर से नीचे उतरवाओ ।"

सेनापति उस प्रधान से विनीत होकर बोला—"मुझे आपकी अधीनता स्वीकार है । आपकी आज्ञा को वहन करने के लिए क्या अब मैं घोड़े पर चढ़ सकता हूँ ?"

"अवश्य ।"

"रुक्नुद्दीन को बन्दी कर कहाँ ले जाना होगा ? उसकी माता कहाँ है ?"

"उसकी माता कहीं भी हो । इससे तुम्हें कोई वास्ता नहीं । तुम उसे बन्दी कर हमारे पास ले आओ । हमारा एक सिपाही तुम्हारे साथ जायगा ।"

सेनापति के मस्तक पर से पीड़ा का पर्वत हट गया । जिसकी उपासना करता हो वह, कैसे उसके बेटे को बन्दी बनाकर उसके सामने ले जाता ? उसके एक विचार यह भी आया कि अपनी असावधानी दिखाकर रुक्नुद्दीन को भाग जाने का अवसर क्यों न दे दिया जाय ?

वे चालीसों तुर्की सरदार अपनी अस्सी आँखों से उसे देख रहे थे। सेनापति ने अपना घोड़ा रुक्नुद्दीन के हाथी के पास ले जाकर पुकारा—"रुक्नुद्दीन !"

उसके मद और पद का नशा उड़ने लगा, वह बोला—"बशीरुद्दीन, तुम होश में नहीं हो क्या ? सुलतान को क्या इस प्रकार नाम लेकर पुकारा जाता है ?"

सेनापति धीरे से बोला--"सुनो, अब वे चालीस-के-चालीस तुर्की सरदार हमारे सहायक नहीं रहे । उन्होंने तुम्हें बन्दी कर लेने की मुझे आज्ञा दी है।"

"तुम हमारे सेनापति, मुझे कैसे बन्दी बना लोगे ?"

'अब मैं अपनी पगड़ी बचाने को उनकी आज्ञा का पालन करने लगा हूँ। चुपचाप हाथी में से नीचे उतर आओ।"

"सकीना, कुछ है क्या ?"

"नही, पाँचों सुराहियाँ खाली हैं ।"

बशीरुद्दीन की आज्ञा से महावत ने हाथी को भूमि पर बैठा दिया। रुक्नुद्दीन उतरते हुए बोला—"सकीना !"

"वह तुम्हारे साथ नहीं जा सकती।"

"पर मैंने उसे विवाह का वचन दिया है।"

"राजकुमार, तुम हाथी पर से नीचे उतर आए हो, अब तम्हें अपना नशा भी उतार देना चाहिए।" सेनापति ने साथ आए हुए सिपाही को संकेत दिया। उसने रुक्नुद्दीन को बाँध लिया।

"मुझे कहाँ ले जा रहे हो ?"

"तुम्हारी माताजी के पास।"

बशीरुद्दीन ने राजकुमार को ले जाकर तुर्की सरदारों के प्रधान को सौंप दिया। प्रधान ने सैनिक से कहा—"इसे भी वहीं ले जाओ।"

सैनिक रुक्नुद्दीन को ले चला।

तुर्की सरदार ने बशीरुद्दीन से कहा–"तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"आपका सेवक हूँ।"

"अच्छी बात है। तो अब तुम रुक्नुद्दीन के नहीं, हमारे सेनापति नियुक्त हुए।"

बशीरुद्दीन ने विनीत होकर उस पद की स्वीकृति दी।

'तुम्हारी अब तक की सेना क्या अब तुम्हारे नवीन पद के अनुशासन में रहेगी ?"

"उनके वेतन का भार किस पर रहेगा ? क्या सुलताना रज़िया पर ?"

करीमशाह हँसकर बोला—"अरे, औरत के राज से छुट्टी पानें को यह

सब किया गया और तुम रज़िया को ही सुलताना बनाना चाहते हो ? नहीं शाह तुर्कान नहीं, रज़िया भी नहीं।"

"फिर क्या आप लोगों में से कोई ?"

"यह कैसे हो सकता है ? रज़िया का और एक छोटा भाई है।"

"वह नादान है।"

"हम चालीस उसके अभिभावक रहेंगे। जाओ सेना, को किले ले जाओ और उसके भोजन और आराम का प्रबंध कर उसे अपनी ओर करो।"

सकीना ने जब रुक्नुद्दीन को बन्दी बनाया जाता देखा तो वह चिल्लाई खज़ांची ने कहा—"उनकी गिरफ्तारी से तुम्हें रोने की क्या आवश्यकता है ?"

"तुमने सुना नहीं, उन्होंने मुझसे विवाह करने का वचन दिया है। यह देखो, मेरी उँगली में उनकी अँगूठी।"

"चुपो-चुपो, अगर तुमने फिर ऐसा कहा तो तुम्हें भी जेल में डाल दिया जायगा।"

सकीना बोली—"अगर तुम मुझे नहीं उतारोगे तो मैं हौदे पर से नीचे कूद पड़ूँगी।"

खज़ांची को अवसर मिला। उसने उसे दोनों हाथों में बाँध लिया और कहने लगा—"यह क्या ! मार डालोगी अपने को ?"

"हटो, छोड़ो। मैं सुलतान की प्रेयसी हूँ। तुम इस तरह मुझे पकड़ लेने वाले कौन हो ?"

खज़ांची ने अब उसकी कमर पकड़ ली—"वह निरन्तर शराब में धुत्त रहनेवाला बँधकर चला गया। अब वह किस बात का सुलतान ? उसका ध्यान छोड़ दो।"

सकीना ने उसका बन्धन छुड़ा लिया। खज़ांची धीरे-धीरे बोला—'इधर देखो, इस बक्स में रेवड़ियों के नीचे मैंने बहुत-सी अशर्फियाँ छिपा रक्खी है।"

सकीना ढीली पड़कर बोली—"फिर आप क्या चाहते हैं ?"

"तुम्हें नहीं, तुम्हारी भलाई चाहता हूँ। चलो मेरे घर, वहाँ हिफाज़त से रहोगी।"

"अगर आपको भी पकड़ ले गए तो ?"

"हम विजेता के ही गीत गाते हैं। फिर हमें कौन पकड़ सकता है ?"

महावत ने ख़ज़ांची से पूछा—"हाथी कहाँ जायगा ?"

"सेनापति के आने तक यहीं ठहरेंगे। वे फिर जैसा कहेंगे।"

इस अवकाश में ख़ज़ांची ने सकीना की सहायता से तमाम अशर्फियाँ शराब के खाली बर्त्तनों में भर दीं।

सेनापति के आने पर ख़ज़ांची ने पूछा—"मेरे लिये क्या आज्ञा है !"

"अशर्फियाँ जो कुछ बची हैं, ख़ज़ाने में पहुँचा दो।"

अशर्फियाँ सब लुटा दी गईं। कुछ रेवड़ियाँ बची हैं, देख लीजिए।"

यह क्यों रो रही है ?"

"शराब के बर्तनों को अपने कपड़े मे ढक सकीना रो रही थी।"

ख़ज़ांची बोला—"रुकुद्दीन ने इससे विवाह करने का वचन दिया था। अब यह क्या करे ?"

"इसके माता-पिता ?"

"मेरे मुहल्ले में इसकी मौसी रहती है, उसी ने इसका पालन-पोषण किया है। वहीं जायगी।"

"हाथी को हाथीखाने में, संदूक़ खजाने में और इस दासी को इसकी मौसी के यहाँ पहुँचाकर तुम मेरे पास आओ।"

ख़ज़ांची सकीना को अपने ही घर ले गया। मुहल्ले में उसकी मौसी नाम की कोई चिड़िया भी नहीं थी। शराब के सभी बर्त्तन वहाँ उतार लिए गए। हाथी ख़ज़ाने के ख़ाली संदूक को लेकर महावत के साथ चला गया।

ख़ज़ांची की पत्नी ऊपर छत में कपड़े सुखाने डाल रही थी। पति का आगमन सुनकर दौड़ी-दौड़ी चली आई स्वागत के लिये। पर वहाँ पति के साथ एक सुन्दरी को भी घर के भीतर आया देखकर बानो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

सकीना एक कोने में मुँह किए शराब के बर्तनों को अपनी चादर से ढक रही थी। उसकी समझ में नहीं आया ख़ज़ांची की पत्नी का क्या कहकर सामना करे।

बानो ने पति से इशारे में पूछा–"यह कौन है ?"

पति ने अपने होठों पर हाथ रखकर उसे मूक रहने का संकेत दिया।

वह तुरन्त ही ख़ज़ांची को खींच ले गई भीतर के कमरे में। आँखें तरेर कर बोली–"कौन है यह ? क्यों ले आए इसे घर में ?"

'तुम्हारा हाथ बँटाने के लिए एक दासी ले आया हूँ रानी।"

"यह सुन्दरी मेरी दासी बनेगी या तुम मुझे बनाओगे उसकी दासी। सच-सच कहो, यह है कौन ?"

"एक संकट की मारी।"

"क्या नाम हैं इसका, कहाँ से ले आये तुम इसे ?"

"यह सुलतान रुक्नुद्दीन की दासी सकीना है।"

"अब कैसा सुलतान ? उसकी माता को चालीस तुर्की सरदारों ने क़ैद में डाल दिया है।"

"वह भी गिरफ्तार कर लिया गया।"

"फिर तुम इसे यहाँ अपने घर क्यों ले आये ? मुझे इस नारी को देख-कर बड़ा डर लग रहा है।"

"इस पर दया करो बानो। इसके माता-पिता कोई नहीं। कुछ दिन के लिए इसे अपने घर में शरण दे दो।"

"अपने ही हाथों से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी नहीं मार सकती मैं।"

"तो मैं इसके रहने को कहीं और घर का प्रबंध करता हूँ।"

बेगम फिर बहम में पड़ गई, बोली–"अच्छा वह यहीं रहेगी, रहेगी मेरी देख-रेख में।"

"अच्छी बात है।"

"लेकिन इससे पहले मैं उससे बातचीत कर उसके मन को टटोलूंगी।"

"हाँ-हाँ क्यों नहीं! इस समवेदनाको पाकर उसका दुःख कम हो जायगा।"

"पर मैं अकेली ही उससे बातें करूँगी, तुम्हारे वहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं।"

"मुझे अभी सेनापति ने बुलाया है। कदाचित् चालीस सरदारों की सभा में मंत्रणा होगी।"

"कपड़े बदलकर जाओ।"

ख़ाज़ांची कपड़े बदलने को भीतरी कमरे में गया और बानो दबे पैर सकीना के पास। दूर से उसने देखा, सकीना गाल पर हाथ रक्खे बड़ी दूर तक भविष्य को छेद रही थी।

बानो ने दूर ही से पुकारा—"सकीना!"

सुन्दर मधुर स्वर में अपना नाम सुनकर सकीना पुलक-भरी उठ गई। एक अपरिचिता महिला के मुख पर प्रभूत आत्मीयता मिली, गद्गद हो उठी। उसने भी उतने ही प्रीति-संकुलित स्वरों में उत्तर दिया—"सलाम!"

"भीतर चलो, तुम्हारे रहने का कमरा बताती हूँ।"

"लेकिन यहाँ यह जोखिम की चीज़ है। इसकी देखभाल आवश्यक है।"

"बानो ने मन-ही-मन सोचा—"क्या यह स्वयं अपने में एक जोखिम की चीज़ नहीं है?" प्रकट में बोली—"भूलती नहीं हूँ तो क्या ये शराब के ही बर्तन नहीं हैं? शराब को मैं भी जोखिम की ही चीज़ समझती हूँ, मैंने कई बार इनके शराब के प्याले तोड़ डाले हैं। अब समझती हूँ, शराब का निवास तो मन में है। प्याले तोड़ देने से क्या होता है?"

"पर इनमें शराब नहीं है।"

"फिर जोखिम कैसी?"

"इनमें अशर्फियाँ भरी हैं।" सकीना ने ख़ज़ांजी की पत्नी को यह भेद दे देने में कोई हानि नहीं समझी।

बानो ने एक बर्तन के ऊपर पड़ा हुआ कपड़ा उठाकर उसके भीतर झाँका—"इसमें तो कुछ और दिखाई दे रहा है। रेवड़ियाँ तो नहीं?"

"हाँ, तस्करों को धोखा देने के लिए। अशर्फियाँ इसके नीचे हैं।" सकीना ने रहस्य खोलते हुए कहा।

बानो का हाथ बर्तन के भीतर नहीं गया। उसका गला तंग था।

सकीना ने उसे फर्श पर उलट दिया। कुछ रेवड़ियों के बाद दो-चार अशर्फियाँ भी खनकती हुई बाहर निकल पड़ीं।

सकीना फिर उन सबको सुराही में ही उठा-उठाकर भरने लगी। बानो ने उसकी उँगली में चमकती हुई हीरे की अँगूठी देखी। उसका कौतूहल बढ़ गया। वह रुक न सकी—"सकीना, तुम्हारी उँगली में यह अँगूठी बड़ी जगमगा रही है। सच्चा हीरा जान पड़ता है।"

कुछ लज्जा के साथ विनीत होकर वह बोली—"हाँ, सच्चा ही है।"

"कहीं से इनाम में तो नहीं मिली ?"

"हाँ।" आगे कुछ नहीं बताया उसने।

इससे बानो की उत्कंठा और भी बढ़ गई—"कहाँ से मिली ?"

सकीना छिपा न सकी—"सुलतान रुक्नुद्दीन ने दी।"

"क्या तुमने उनकी कभी किसी संकट से रक्षा कर दी थी।"

"हाँ, ऐसे ही। फिर बता दूंगी।"

"नहीं, अभी बताना पड़ेगा।"

"उन्होंने मेरे साथ विवाह कर लेने का वचन दिया है।"

बानो ने बड़ी तीखी निगाह से देखा। उसका वह अँगूठीवाला हाथ पकड़ लिया—"सकीना, क्योंकि रुक्नुद्दीन अब चालीसों सरदारों की दृष्टि में गिर गया है। वह क़ैद में है। इस अँगूठी में उसका नाम खुदा है। इसके पहननेवाले पर भी संकट है। तुम जब तक यहाँ रहोगी, तुम्हें इसको उतार-कर रख देना होगा।"

"यह कैसे हो सकता है! इस अंगूठी को हर समय मेरी आँखों के सामने ही रहना होगा। नहीं तो हमारे बीच का प्रेम-बन्धन टूट न जायगा ?'

"यदि वह जीवन-भर के लिये क़ैद हो गया या कारागार में ही मार डाला गया तो ?'

"तो ? तो ? मुझे क्या करना चाहिए ?"

"अगर इस अँगूठी को उतारकर नहीं रख सकती हो तो तुम्हें इसे बिल्कुल परदे में रखना होगा और तुम भी परदे ही में रहोगी। उस कमरे से बाहर कहीं न जाओगी।"

"ऐसा हो सकता है।"

"एक बात और, तुम्हें ख़ज़ांची साहब से भी परदा करना होगा।"

"मैं तो उनके साथ बराबर बोलती आई हूँ। उन पर खुली हुई हूँ।"

"इससे क्या! अब बोलना बन्द कर दो, ढक जाओ।"

"क्यों? क्यों?"

"मैं यही उचित समझती हूँ। इसी से यहाँ तुम्हारी शरण सुरक्षित रहेगी। चलो, तुम्हें तुम्हारे रहने का कमरा दिखा देती हूँ।"

१६

हाथी से उतरते ही रुक्नुद्दीन का सारा नशा भी हिरन हो गया। उसके दोनों हाथ पीछे कर रस्सी से बांध दिए गए थे। दो सिपाही उसके आगे-आगे चल रहे थे। हाथों में नंगी तलवारें लिए और दो सिपाही उसके बँधे हाथों की रस्सी थामे पीछे-पीछे चल रहे थे। वह नंगे पैर जब कठोर भूमि पर चलने लगा तो उसको नुकीले कंकर-पत्थर चुभने लगे। वह चिल्लाया—"तुम मुझे कहाँ ले जा रहे हो?"

एक सिपाही ने परिहास में कहा—"राजसिंहासन पर बिठाने।"

"ऐसे ही नंगे पैर? नंगे सिर? मेरे पैर का जूता कहाँ है और कहाँ है सिर का राजमुकुट?"

दूसरे सिपाही ने जवाब दिया—"क़ैदी के सिर पर राजमुकुट नहीं होता, नहीं उसके पैर में जूता।"

"और मेरी तलवार भी तो कमर में नहीं है।"

"वह सान पर रखने के लिये गयी है।"

"नहीं, तुम सब मुझसे परिहास कर रहे हो। मेरा सहायक कोई नहीं है क्या यहाँ ?"

"सिर्फ़ फूटी हुई तक़दीर !"

"मेरी अशर्फ़ियों के लूटनेवाले कहाँ हैं ?"

"अब उन चीनी की अशर्फ़ियों में कोई मूल्य नहीं रहा सुलतान !"

सुलतान के एक झटका लगा और उसके मस्तिष्क में फिर बादल छा गए—"बिना छतरी के, हाथी के, राजमुकुट के, तलवार के, जूते के कैसा सुलतान ? नक़ीब कहाँ है !"

एक सिपाही बोला—"है सरकार ! बोल रहा है। अभी ज़रा दूर है। आ रहा है नज़दीक ही। आ गया, सुनिए !"

दूसरा सिपाही बोलने लगा—"सजग ! सचेत ! सावधान ! सरकार की सवारी आ रही है। पैर का जूता फट गया ! सिर की टोपी उड़ गई। कमर की तलवार कुंठित हो गई तो भी क्या ? आ तो रहे हैं ! सुलतान आ रहे हैं ! सजग ! सचेत ! सावधान !"

"बोला तो सही नक़ीब, पर हम जा किधर रहे हैं ?"

"आपकी माताजी महारानी शाह तुर्कान के महल के निकट।"

"यह तो कुश्के फ़ीरोज़ी है। महारानी यहाँ नहीं रहतीं।"

"चलो तो सही, उन्होंने महल बदल दिया। अब यहीं रहने लगी हैं।"

कुश्के फ़ीरोज़ी महल के एक तरफ के फाटक पर कुछ सिपाही पहरा दे रहे थे। उस फाटक से होकर सिपाही हाथ-बँधे रुक्नुद्दीन को आगे ले गए। आज तक जो सिपाही रुक्नुद्दीन को देखकर दूर ही से अभिवादन करते थे, आज वे उसे एक नगण्य व्यक्ति समझकर बड़े तिरस्कार से देख रहे थे।

फिर दूसरा फाटक आया। वह बन्द था। उसके बाहर खड़े हुए सिपाहियों का नायक चिल्लाया—"दूसरा क़ैदी लाया जा रहा है। फाटक खोल दिया जाय !"

रुक्नुद्दीन बोला—"यह फिर नकीब बोला, पर इसकी बोली का मतलब ठीक-ठीक समझ में नहीं आया।"

फाटक खोल दिया गया। हाथ-बँधे हुए रुक्नुद्दीन की गर्दन आप-से-आप नीची हो गई। वह अपनी सारी तेजस्विता गँवाकर धीमी चाल से आगे बढ़ने लगा। उसने पूछा—"महारानी ?"

"अब शीघ्र ही मिलेंगी।"

एक दालान पार कर कारागार था। वे लोग वहीं पहुँच गए। वहाँ पर एक तख़्त में बैठा जो प्रहरी ऊँघ रहा था, वह सगज हो उठ बैठा—"
"कौन ?"

"दूसरा क़ैदी।"

वह उठ खड़ा हो गया, बर्छा भूमि पर बजाते हुए—"आने दो !"

रुक्नुद्दीन ने उसे पहचानकर पुकारा—"मसऊद !"

मसऊद ही था वह। उसने रुक्नुद्दीन के संबोधन की जान-बूझकर उपेक्षा की—"कौन है यह क़ैदी !"

एक सिपाही ने उत्तर दिया—"क़ैदी रुक्नुद्दीन।"

"पिता का नाम ?"

सिपाही ने पिता का नाम छिपाकर कहा—"शाह तुर्कान का बेटा।

"किसलिए आया है ?"

"अपनी माता से मिलने।"

"किसके हुक्म से ?"

"चालीस तुर्की सरदारों के।"

मसऊद ने कारागार का ताला और द्वार खोल क़ैदी को उसके भीतर कर देने का इशारा किया।

कारागार के उस खुले हुए द्वार से उसके भीतर का अंधकार दिखाई देने लगा था। रुक्नुद्दीन ने उसके भीतर प्रवेश करते हुए कहा—"मसऊद ! कमीने !'

"क्यों ऐसा कहते हो ? अब भी तो महारानी के ही द्वार पर चौकसी कर रहा हूँ। पहले हर किसी को भीतर नहीं जाने देता था, अब किसी को भी बाहर नहीं। भीतर जाकर देखिए तो सही, अब आप बाहर न आ सकेंगे।"

तभी कारागार के भीतर से अंधकार को चीरती हुई आवाज़ आई–
"मुझे भूख लगी है।"

आवाज़ पहचानकर रुक्नुद्दीन बोला–"माँ, तुम कहाँ से बोल रही हो ! मैं तुम्हारा बेटा रुक्नुद्दीन तुम्हारी सहायता के लिये आ गया !"

"मैं यहाँ बँधी पड़ी हूँ। सेना कितनी साथ में लाए हो ?"

"वेतन न मिलने से उन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया।" रुक्नुद्दीन उस अंधकार में माता की आवाज़ पर खिच गया। उसे टटोलने लगा।

मसऊद ने कारागार के भारी द्वार फिर बन्द कर दिए।

शाह तुर्कान बोली-"कहाँ है तू ? मेरे पैरों की बेड़ियाँ खंभे से जड़ दी गई हैं। नहीं तो मैं ही तेरे पास चली आती। मेरे बेटे, तूने लाहौर से लौटने में बड़ी देर कर दी।"

"नहीं, हम तो आपका पत्र मिलते ही रात में चले आए थे।"

'तब मुझे ही क़ैद कर लेने में इन लोगों ने जल्दी कर दी।"

बेटा माता के पास पहुँच गया। शाह तुर्कान ने पूछा–'तेरे पैरों में भी क्या बेड़ियाँ पड़ी हैं ?"

"नहीं, अभी तो हाथ ही रस्सी से बँधे हैं।"

"ला, मैं अपने हाथों से उन्हें खोल दूँगी।" शाह तुर्कान उसके हाथों की रस्सी खोलते-खोलते उसकी उँगली पर कुछ न देख बोली–"तेरी उँगली की अँगूठी कहाँ है ?

"खो गई ! विद्रोहियों का सामना करते हुए कहीं गिर गई।"

शाह तुर्कान रोने लगी। रोते-रोते बोली–'तो अब कुशल नहीं है। उस अँगूठी में एक फ़क़ीर की दुआ जुड़ी हुई थी। उन्होंने कहा था कि जब तक यह

अँगूठी तुम्हारे साथ रहेगी, तुम्हारा कोई बाल बाँका न कर सकेगा। इसीलिये मैंने बलवाइयों को दबाने के लिए वह तुम्हारी उँगली में पहनाई थी और तुमने उसे खो दिया।

"नहीं माँ! खोई नहीं। मैंने किसी के पास उसे धरोहर के रूप में रखा है।"

"उसे वापस मँगा ले बेटा। नहीं तो यह क़ैदखाना क्या है, हमारी क़ब्र है यहीं।"

बाहर मसऊद ने तुर्की सरदारों के प्रधान करीमशाह को घोड़ा दौड़ाते हुए उधर आते सुना। वह विनय-पूर्वक खड़ा हो गया।

उसने कारागार के प्रवेश पर जब घोड़ा रोक दिया तो मसऊद दौड़ा-दौड़ा वहीं पर जा पहुँचा। घोड़े की पीठ पर से ही सरदार ने पूछा—"बन्दी आ गया क्या?"

"जी सरकार।"

"उसे भी बेड़ियाँ पहना दी गईं?

"सिपाही लोहार को बुलाने गया है।"

"देर न की जाय। पहरे में बहुत सावधानी रखनी होगी—"करीमशाह घोड़ा दौड़ाते हुए कुश्के फ़ीरोजी की ओर चला गया। कस्रे सफेद में शाह तुर्कान के सभी सगे-सम्बन्धियों, दास-दासियों को निकालकर उन चालीसों तुर्की सरदारों में से बहुतों ने अपना अधिकार कर लिया था।

रज़िया की सेविका ने जब उसे करीम शाह के आगमन की सूचना दी तो वह सिर से पैर तक काँप उठी। वह समझी, कदाचित् अब उसको कुश्के फ़ीरोज़ी खाली कर देना होगा।

रज़िया ने बड़ी विनम्रता-पूर्वक प्रवेश-द्वार तक जाकर सरदार का स्वागत किया और बोली—"आपने यहाँ तक आने का कष्ट कैसे किया?"

"तुम्हें यह सूचना देने आया हूँ कि आज उसके नालायक़ बेटे को भी गिरफ्तार कर कारागार में डाल दिया गया है।"

रज़िया ने करीमशाह के इस समाचार पर न तो कोई हर्ष ही प्रकट किया न ही कोई खेद। बोली--"राजसिंहासन पर आप ही चालीसों सरदारों के प्रतिनिधि होकर विराजमान होंगे न ?"

"नहीं। अवश्य ही राज-काज का संचालन हम चालीसों की मंत्रणा से ही होगा, पर राज-सिंहासन पर सुलतान इल्तुतमिश का ही कोई वंशधर प्रतिष्ठित किया जायगा, नहीं तो प्रांतों के राज्यपालों को हमारे साथ विद्रोह का बहाना ढूँढ़ना नहीं पड़ेगा !"

रज़िया के भीतर राज्य की सुप्त कामना ज गने लगी। उसका हृदय वेग-पूर्वक स्पंदित होने लगा, पर वह बोली कुछ नहीं।

"मैं तो हृदय से चाहता हूँ, सुलतान इल्तुतमिश की मरते समय की इच्छा क्यों न पूरी हो।" करीमशाह ने बड़ी मोह-भरी दृष्टि से रज़िया की ओर देखते हुए कहा।

रज़िया ने आँखें नीची कर लीं और बोली—'हाँ, उनकी क़ब्र अभी अधूरी ही पड़ी है। अवसर मिलने पर मैं जो कुछ धन-संपत्ति मेरे पास है, सब कुछ बेचकर उसे भी पूरी करा दूँगी और भी उनकी सभी अपूर्ण योजनाएँ।"

"ये सब बहुत छोटी समस्याएँ हैं। ये तो पूरी हो ही जावेंगी। बड़ी समस्या है, राजसिंहासन पर किसे बिठाया जाय ?"

रज़िया खूब अच्छी तरह जानती थी, वे चालीसों तुर्की सरदार उसे राज्य देने के पक्ष में नहीं थे, इसलिए उसने उत्तर में कहा—"मेरा छोटा भाई, उसे क्यों नहीं राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया जाय ?"

"पर तुम्हें क्या उनके मृत्यु-समय की इच्छा ज्ञात नहीं है ? तुम्हारे सिर पर हाथ रखकर उन्होंने क्या कहा था ? यही नहीं, वर्षों पूर्व जब उन्होंने राजकुमारों की तरह तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया था, उसका क्या अर्थ था ?"

"मैं राजसिंहासन और राजमुकुट की भूखी नहीं हूँ। पर मैं प्रजा के विचारों के विरुद्ध राजदंड न सँभालूँगी।"

'प्रजा हम चालीसों सरदारों के वश में है और वे उनतालीस सरदार, उन सबका अगुवा मैं हूँ। मैं जैसा कहूँगा, उन्हें मानना पड़ेगा। मैं तुम्हें चाहता हूँ।" करीमशाह ने बड़ी आकुल पिपासा लेकर रज़िया का हाथ पकड़ लेना चाहा।

वह पीछे को हटती गई। उसका मुख रक्तिम हो उठा। उसने काँपती हुई वाणी से कहा—"सरदार साहब, मैं भी चाहती हूँ, उनकी अन्तिम इच्छा पूर्ण हो।"

"तो तुम मुझे अपनी सहमति दे दो। फिर मैं देख लूँगा हमारा शत्रु कोई भी नहीं है। शाह तुर्कान और उसका बेटा रुक्नुद्दीन ये दोनों हमारे क़ैदी हैं। राजधानी में सेना पर हमारा प्रभुत्व है। दिल्ली में सशक्त शासन स्थिर कर लेने पर इल्तुतमिश के जीते हुए सभी प्रांत हमारे अनुशासन में निबद्ध हो जावेंगे।"

"पर सुलतानकी अंतिम इच्छा का एक विशेष अंश आप क्यों भूलने लगे?

करीमशाह पर सुलतान की वह बात भी प्रकट थी। वह उसे समझ गया। बोला—"तुम्हारा राजसिंहासन पर बैठना प्रजा की इच्छा और उसके हित की प्रेरणा है और तुम्हारा अपने हृदय के आसन पर किसी को बिठाना तुम्हारी अपनी इच्छा है। उस पर किसी का प्रतिबंध नहीं चल सकता। कहते-कहते करीमशाह ने रज़िया का हाथ इस बार भी पकड़ ही लिया—"केवल तुम्हारे 'हाँ' कहने की देर है और फिर दिल्ली का राजमुकुट तुम्हारा है।"

"सरदार साहब, देखिए कोई आ न जाय!"

●

१७

अब तो रज़िया के सौभाग्य का सूर्य उदित हो दिन-दिन आकाश में ऊपर चढ़ने लगा। सन् १२३६ ई० में बड़े समारोह से उसका राजतिलक संपन्न हुआ। वह सुलतान रज़ियतुद्दीन का नाम रखकर राजसिंहासन

पर सुशोभित हुई। कुछ लोगों के अंधविश्वास को स्थिर रखने के लिए उसका भाई भी राजा बना दिया गया।

वह परदे से अब बिलकुल ही बाहर निकल आई। वह पुरुष-वेश धारण कर केवल राज-सभा में ही न जाती, घोड़े पर सवार होकर प्रजा की देख-भाल के लिए भी नग्न खड्ग लेकर विद्रोहियों के त्रास का कारण बनती। जहाँ उस के शौर्य और साहस से वे विनीत नहीं हुए, वहाँ उसने कूटनीति का सहारा लिया। भाँति-भाँति के उपायों से उन्हें विभक्त कर दिया गया। पारस्परिक ईर्ष्या और महत्वाकांक्षा से उनके बीच में फूट फैल गई और अनेक रज़िया के पक्ष में हो गए।

कोई पद के प्रलोभन में पड़ गया, कोई शक्ति से पराजित हुआ। विद्रोही तितर-बितर हो गए। लाहौर के राज्यपाल अलाउद्दीन का पीछा कर उसे पकड़ लिया गया। फिर उसका वध कर दिया गया। विद्रोही मंत्री युद्ध में पराजित होकर सिरमौर की पहाड़ियों की तरफ भागा। रज़िया की सेना ने उसका पीछा किया, पर उसका कुछ भी पता न चला। कुछ लोगों का अनुमान था, उसने आत्महत्या कर ली। कुछ कहते थे कि वह जंगली पशु का ग्रास हो गया।

बंगाल और सिंध के शासकों ने विनम्र होकर विरोध छोड़ दिया और रज़िया को सुलताना मान लिया। इस प्रकार लखनौती से देवल तक सभी अमीर-उमरावों ने, शासक-सरदारों ने उसके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया, रूढ़ि के उपासकों और धर्माध्यक्षों ने, राजपद पर नारी की प्रतिष्ठा मानकर स्वयं भी राज-सम्मान और अर्थ-लाभ प्राप्त किया।

रज़िया न्यायप्रिय थी, उदार और दयावती भी। वह प्रजा-वत्सला, दीन दुखियों पर उसकी कृपा थी और गुणी-विद्वानों का आदर करती थी। एक शासक के लिए जिस-जिस योग्यता का होना आवश्यक था, वह उन सभी गुणों से ओत-प्रोत थी। इतिहासकार लिखता है, उसके एक ही कमी थी कि वह नारी थी।

वे चालीसों तुर्की सरदार, उन्हीं की मदद से रज़िया इस पद पर पहुँची थी। उनके प्रधान करीमशाह ने उन्हें अपने वश में कर रक्खा था। वे रजिया

की समझ के प्रशंसक रहे। उन्होंने राजसिंहासन पर नारी का अस्तित्व सहन कर लिया और उसके पुरुष-वेश के लिए कोई आपत्ति नहीं की।

वहुत समय तक यह स्थिति चलती रही, रज़िया करीमशाह को नये-नये वचन देती रही और वह उनमें उलझता रहा। रज़िया ने धीरे-धीरे अपने राजसिंहासन के पाए सुदृढ़ कर लिए तो धीरे-धीरे उसके वादे दुर्बल पड़ते गए। जब तुर्की सरदारों के प्रधान ने रज़िया का यह रूप देखा तो उसने भी अपना रंग बदल दिया और अपने दल के सभी सरदारों को रज़िया के विरोध में खड़ा कर दिया। अब उन सबको राजसिंहासन पर रज़िया खटकने लगी और उसका पुरुष-वेश धर्म और सदाचार की जड़ पर कुठाराघात करनेवाली चीज़ हो गया।

एक कारण से प्रकट हो गया वह, अबीसीनिया का हबशी जमालुद्दीन याकूत ! उसके साथ रज़िया का बहुत दिनों का परिचय था। वह उसका सह-चर था और शिक्षक भी। उनकी वह सहचारिता धीरे-धीरे प्रणय में बदल गई। रंग की प्रतिकूलता उनके बढ़ते हुए प्रेम की शत्रु न हुई।

राजशक्ति हाथ में आ जाने पर रज़िया ने याकूत को किसी प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त करने का निश्चय किया। याकूत ने रज़िया के पुरुष भावना जगाकर उसके भीतर साहस और शौर्य का विस्तार किया था। एक बार तो उसने एक घातक के हाथों से उसके प्राण ही बचाए थे। याकूत रज़िया की केवल मित्रता पाकर ही संतुष्ट था। वह दूर ही से उसके दर्शन कर कृतार्थ था, पर रज़िया कुछ और चाहती थी।

उसने याकूत को अमीर याकूत का पद प्रदान किया। इस प्रकार उसे रज़िया का निकट संपर्क प्राप्त हो गया। यह तुर्की सरदारों के प्रधान करीम शाह को खटकने लगा। जब उसके विरोध से कोई फल न निकला और याकूत को वह अमीर का पद मिल ही गया तो वह रज़िया का शत्रु बन बैठा और अपने सभी साथी-सरदारों को उसके विरुद्ध भड़का दिया।

सुलतान इल्तुतमिश ने अपने महल में एक घंटी लगा रक्खी थी। वह जंजीर खींचकर बजाई जा सकती थी। जंजीर का दूसरा सिरा महल के बाहर

फाटक पर लटकता रहता था। कोई भी उसे खींचकर बजा सकता था। सुलतान घंटी बजानेवाले को बुलाकर उसकी फरियाद सुनता ही था।

बहुत दिनों तक वह घंटी बजती रही, लोगों को न्याय भी मिलता रहा फिर सुलतान नये-नये प्रांतों की विजय-यात्रा में उलझ गया और विजित प्रांतों के उपद्रवों को शांत करने में दत्तचित्त हो गया। जब घंटी को सुननेवाला ही राजधानी से बाहर रहने लगा तो उसे बजाने ही कौन आता ? प्रहरियों ने विपक्षियों का प्रलोभन पाकर जंजीर की कड़ियाँ तोड़ उसके सिरे को जनसाधारण की पहुँच से दूर कर दिया। फिर कुछ समय बाद तो घंटी ही अदृश्य कर दी महल में और सुलतान के स्मृति-मंदिर से भी।

जब रज़िया के हाथों में शासन के सूत्र आए तो प्रजा की समवेदना जीतने के लिए उसे पिता की घंटी याद आई, तब उसने पहले की ही तरह अपने महल में घंटी लगाए जाने की आज्ञा दी।

घंटी ठीक अपने पहले ही मार्ग पर लगा दी गई। पहरे पर के सिपाही को समझा दिया गया कि अगर उसने किसी को रोका तो कठिन दंड का भागी होगा। ढिंढोरा पीटकर नागरिकों को घंटी के पुनर्जन्म से अवगत कराया गया।

उस दिन दो किसानों ने घंटी की जंज़ीर खींची। वे भाग्य के धनी निकले। उन्हें तुरंत ही सुलताना के दर्शन प्राप्त हो गये। महल के निकट ही एक कमरा घंटी बजानेवालों से भेंट करने के लिए बनाया गया था। एक दासी ने उन दोनों को वहाँ बिठाकर रज़िया को सूचना दी।

रज़िया ने आते ही उनसे पूछा—"कौन हो तुम ?"

अभिवादन कर दोनों ने कहा-"पीड़ित किसान हैं।"

"अनाज के दाने पर ही मेरा राज्य ठहरा हुआ है। तुम्हारा सतानेवाला कौन है, उसे कठिन दंड दिया जायगा।"

"आकाश के सताए हुए, बरसात ने धोका दिया। हमारी फ़सल चौपट होने को है। आपने कहा था.."

"रज़िया बीच ही में बोल उठी—"मुझे अपने वादे याद हैं। मैं अपने

शासन को कुछ और दृढ़ कर लूं । राजधानी के बहुत से अमीर और सरदार फिर मेरा विरोध करने लगे हैं । उनकी देखा-देखी कुछ प्रांतों के शासक भी ।"

एक किसान बोला—"राजमुकुट पहननेवालों के मित्र औंर शत्रु निरंतर घटते-बढ़ते ही रहते हैं, लेकिन हमारी जो खेती सूख गई तो फिर उस पर आप की दया का महासमुद्र भी हरियाली न चढ़ा सकेगा ?"

दूसरे किसान ने पूछा—"आपने क्या वादा किया था ?"

रज़िया ने उत्तर दिया—"मेरे पिता ने जमुना की जिस नहर का खुदान आरंभ किया था, मैं अवश्य उसे पूरा करूँगी ।"

फिर पहले किसान ने कहा—"वह दो मील लंबा और एक मील चौड़ा हौजे-सुलतान भी टूटा पड़ा है ।"

"मैं आज ही उसकी मरम्मत के लिए आज्ञा-पत्र ज़ारी करूँगी ।"

"आकाश के कोप पर आपकी प्रसन्नता विजयी हो ।"

दोनों किसान रज़िया सुलताना की जय-जयकार करते हुए गए ही थे कि फिर घंटी बजने लगी ।

"फिर यह कौन आ गया ?"

दासी ने उत्तर दिया—"महारानीजी, हर समय ही क्या घंटी का समय है ? तब तो ये लोग न आपको खाने-पीने ही देंगे न आराम ही करने ।"

"इस पर विचार करेंगे । अब तो बुलाकर लाओ यह कौन है ?"

दासी ने जाकर देखा, याकूत खड़ा था पहरेवाले के पास । याकूत के लिए सुलताना के सभी द्वार मुक्त थे । फिर उसने क्यों घंटी बजाई ? दासी हँस कर बोली—"क्यों अंगरक्षकजी, किसकी शिकायत लेकर आए हो ?"

"अपने दुर्भाग्य की ।"

"उसने क्या अत्याचार किया है तुम पर ? अब तो तुम्हें अमीर याकूत बना दिया गया है । कहाँ-से-कहाँ पहुँच गए ।"

"मैं ग़रीब ही अच्छा था । अमीर हो जाने से इन चालीसों तुर्कों की आँखों में खटकने लगा हूँ । यही खटका रात-दिन लगा है, वे मुझे जीवित भी रहने देंगे क्या ?"

रज़िया ने जब याकूत को आते देखा तो वह अपने कक्ष में चली गई। दासी उसे वहीं पहुँचाकर लौट गई।

रज़िया ने कहा—"याकूत, यह घंटी तुमने बजाई ? क्यों ?"

याकूत बोला—"इस हटा दी गई घंटी को आपने फिर यहाँ पर लगा दिया !"

'तुम इस घंटी के विरोध में बोलने के लिए क्यों आए याकूत ? तुम किसी और बात का भी बहाना बना सकते थे यहाँ आने के लिए।"

"मैं भयभीत हो उठा हूँ, राजकुमारी !" याकूत ने ससके गोरे हाथ के ऊपर अपना काला हाथ रख दिया। मानो चंद्रमा को राहु ने ढक लिया ?

याकूत, अबीसीनिया का वह काला हबशी, क्या जादू चला दिया था उसने उस गोरी राजसुंदरी पर ! बड़े-बड़े कुलीन युवक उसके पाणिप्रार्थी होने आए, पर किसी को उसे छू लेने का साहस ही न हुआ।

रज़िया ने अपना हाथ हटाते हुए कहा—"नहीं याकूत, दूरी पर परदे की ओट से वह दासी ज़रूर देख रही होगी। इसे मेरे और तुम्हारे सम्बन्धों में बड़ी रुचि है। फिर वह एक बात में कई बातें जोड़कर··"

"इसे निकाल ही देना उचित है।"

"नहीं याकूत, वैसे यह दासी स्वामिभक्त और सेवा-चतुर है।"

"इसे निकाल देने के लिए नहीं कह रहा हूँ। इस घंटी को निकलवा दो आज, अभी।"

"नहीं, प्रजा के साथ यह मेरा नाता।"

"मैं तुम्हारे जीवन को इतने संकट में नहीं देख सकता। मैं तुम्हारा अंगरक्षक हूँ। प्राणों की रक्षा के लिए तुम्हारे कितने ही सिपाही क्यों न हों ? नहीं, मैं ही तुम्हारे हर समय सन्मुख रहता हूँ। यह घंटी बजाकर कोई भी घातक न्याय का भिखारी बन तुम्हारे प्राणों का मालिक बन जायगा।"

"नहीं याकूत, तुम्हारे-जैसा रक्षक होकर मैं निर्भय हूँ, मुझे डरपोक न बनाओ।"

याकूत कहने लगा—"क्योंकि अंगरक्षक के नाते मैं सोचता हूँ, बाहर घंटी बजानेवालों की जाँच के लिए अपना कोई विशेष अधिकारी नियुक्त होना चाहिए।"

"यह हो उकता है।"

"दूसरी बात, घंटी बजाने का एक समय नियत किया जाय। यदि दिन-रात के चौबीसों घंटे घंटी बजती रही तो आप कब आराम करेंगी, कब प्रजा का हित सोचेंगी और कब दुश्मनों के कुचक्रों के विरोध में मंत्रणा होगी ?"

"यह भी स्वीकार है।"

याकूत प्रसन्न होकर चला गया।

कुछ समय पश्चात् फिर घंटी बज बठी। रज़िया ने दासी से कहा—"जा, देख तो कौन है ?"

दासी देखकर आई—"मैं नहीं पहचानती। उन्होंने कुछ नहीं बताया और स्वयं ही चले आ रहे हैं।"

रज़िया अपने कक्ष से बाहर आ पहुँची। वह व्यक्ति आकर बोला—"मैं हूँ भटिंडा का सूबेदार अलातूनिया।"

रज़िया उसे अपने स्वागत-कक्ष में ले जाती हुई बोली—"आपको घंटी बजाकर आने की क्या आवश्यकता थी ?"

"फ़रियादी होकर आया हूँ।"

"क्या फ़रियाद है आपकी ?"

"मुझे लूट लिया गया है।"

"किसने ? क्या कोई आपकी सूबेदारी के विरोध में खड़ा हुआ है ?"

"नहीं, मैं अपने पद-पदवी की रक्षा अपनी भुजाओं के बल और तलवार से कर लेने में समर्थ हूँ। पर अपनी आशाओं और आकांक्षाओं के लुट जाने पर क्यों न आपके पास आऊँ ?"

"बताते क्यों नहीं ? किसने लूटा है ?"

"अगर आपने कहूँ तो क्या यह झूठ है ?"

रज़िया ने बड़े रूखेपन से कहा—"सूबेदार, मैं आपको इसका उत्तर एक बार दे चुकी हूँ। क्या फिर तुम्हारा यह बेसुरा राग सुनने के लिए मैंने यह घंटी यहाँ पर बाँधी है?"

"सुलताना, अशिष्टता की क्षमा चाहता हूँ। आपको अपने मित्र और शत्रु की पहचान ही नहीं है। शाह तुर्कान और उसके बेटे को कैद कर लेने से अगर आप अपने को सुलताना समझने लगी हैं तो आपका यह स्वप्न शीघ्र ही टूट जायगा।"

"नहीं, ऐसा तो नहीं समझती।"

"जिन चालीस सरदारों को आप अपना समझ रही हैं, वे भीतर-ही-भीतर आपसे घृणा करते हैं। उन्हें राजसिंहासन पर नारी की छाया असह्य है।"

"यह भी मैं जानती हूँ।"

"उनके कुचक्र से बाहर निकल जाने का मार्ग मुझे ज्ञात है।"

"बताते क्यों नहीं?"

"पहले मेरा हाथ पकड़ लो:"

"मैं अपने पिता के मृत्यु-समय की प्रतिज्ञा को तोड़ने में असमर्थ हूँ।"

"तो इस राजसिंहासन में उनका दिया हुआ उत्तराधिकार भी तुम सुरक्षित न रख सकोगी।" अलातूनिया निराश होकर चला गया।

१८

ख़ज़ांची ने कहा—"बानो, मैं सकीना को तुम्हारा हाथ बँटाने के लिए लाया था। तुमने उसे ताले में इस तरह क़ैद रख दिया कि तुमको ही उसकी चाकरी करनी पड़ गई। खाना खिला चुकी क्या उसे?"

बानो मुँह टेढ़ा कर बोली—"मुझे किसी से सेवा कराने की ज़रूरत नहीं है। मुझे अपने ही हाथों की बनाई हुई रसोई पसंद है। मुझे नौकर-चाकरों का कोई भरोसा नहीं। वह रुक्नुद्दीन से विवाह करने की आशा में जीनेवाली क्यों हमारे घर में झाड़ू देगी, कपड़े धोवेगी या बर्तन साफ करेगी?"

"उसके लिए तो दूसरे नौकर-चाकर हैं ही हमारे यहाँ। सकीना को तुम्हारे मनोरंजन के लिए लाया हूँ मैं यहाँ। वह बात करने, कथा-कहानी कहने में बड़ी चतुर है। रबाब बजाने में बड़ी दक्ष, उसका गला बड़ा सुरीला है। तुम्हें कोई गीत नहीं सुनाया उसने ?"

"गीत सुनकर क्या मेरा पेट भर जायगा ? एक बवाल लाकर रख दिया तुमने मेरे घर के भीतर। अभी और कितने दिन रहेगी वह ?"

"अगर तुम उससे ऊब उठी हो तो मैं आज ही कहीं और प्रबंध कर दूं उसका।

बानो को यह प्रस्ताव भी पसन्द नहीं हुआ। उसके यह शंका जाग उठी कि अगर उसने उसे कहीं छिपाकर रख दिया तो उसके और भी मानसिक उत्पीड़न उत्पन्न हो जायगा।

इसी समय नौकरानी ने आकर कहा–"एक बुढ़िया किसी आवश्यक काम के लिए आपसे मिलने आई है।"

वह उठकर बाहर आया। एक अधेड़ उम्र की नारी उसके द्वार पर खड़ी थी। उसके सिर के आधे-पौन सफ़ेद बाल अस्त-व्यस्त होकर उसके मुख पर भी लटक रहे थे। उसका पहनावा भी ऐसा ही था जीर्ण-शीर्ण, पर अपने दिनों में वह बहुमूल्य रहा होगा। जान पड़ता था, वह बड़े घरों से संबद्ध कोई चाकरानी होगी और धनी-मानी गृह-स्वामिनियों ने उसे अपने पुराने कपड़े दे दिए होंगे। उसके नीचे के जबड़े में से दो दांत निकल गए थे, और भी कुछ जड़ें छोड़ चुके थे।

बड़ी विनम्रता से उसने खज़ांची को सलाम किया और बोली—हुज़ूर की आज्ञा हो तो मैं इस चबूतरे पर बैठ जाऊँ। कुछ जरूरी बातें करनी हैं आपसे। खड़ी खड़ी थक जाऊँगी।"

खज़ांची ने सिर हिलाकर उसे आज्ञा दे दी। वह चबूतरे पर बैठ गई। बड़ी तत्परता से अपनी आँख तक दुपट्टा खींचकर कहने लगी–"सरकार, कैसे दिन देखे मैंने, अभी न जाने भाग्य में क्या-क्या देखना है मुझे !"

"कौन हो तुम ?"

"मैं एक दाई हूँ। औरतों-बच्चों की बीमारियों का छोटा-मोटा इलाज भी कर लेती हूँ। कल रात शाह तुर्कान के पेट में बड़ी जोर की पीड़ा हुई। उसने अपनी चीख-पुकार से कारागार ही नहीं, सारा आकाश सिर पर उठा लिया। कारागार के बाहर पहरे पर मसऊद था। मैं नहीं कह सकती, उसकी नींद में विघ्न पड़ा या उसके दया जाग पड़ी।"

"मर जाने दिया होता उसे।"

"कर्म तो उसने ऐसे ही किए हैं, पर उसके कर्म उसी के साथ हैं और हमारे हमारे साथ। यही सोचकर मसऊद कारागार का द्वार खोलकर उसके पास गया। जाते ही उसने सबसे पहले उसके पैर में जकड़ी बेड़ी सुरक्षित देखी फिर बोला—"क्यों शोर मचाती है?" वह बोली—"मसऊद, तूने बरसों मेरा नमक खाया है। मैं पीड़ा से मर रही हूँ, जा सलीमन दाई को बुला ला। उसने कई बार मेरे पेट के इस वायु के गोले को ठीक किया है। मैं इस कारागार से घबराती नहीं हूँ, पर इस पीड़ा से तुम सब लोगों की नींद में बाधा पड़ रही है। मसऊद ने दूसरा सिपाही भेज, सुलताना की अनुमति लेकर मुझे बुलवा लिया।"

"क्या तुम्हारे इलाज से ठीक हो गई वह?"

"जानती तो क्या हूँ मैं, पेट के भीतर की बात जान भी कोई क्या सकता है, लेकिन मैंने पहले भी दो बार उसकी पीड़ा मिटाई थी। उसका मेरे ऊपर विश्वास था। उसी ने उसे अच्छा कर दिया।"

"बिलकुल ठीक हो गई क्या?"

"हाँ, एक-दो बार की मालिश से ठीक हो जायगी।"

"पर तुम यहाँ मेरे पास किसलिये आई हो?"

"रुक्नुद्दीन की दासी सकीना को आप यहाँ ले आए हैं क्या?"

भौंहों में बल देकर खजांची बोला—"मैं कहाँ ले आया हूँ? जब उसे गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया तो वह कहाँ जाती?"

"आपने अपने यहाँ उसे नौकर रख लिया क्या?"

"मेरे यहाँ नौकरों-चाकरों की कमी है क्या?"

"नहीं, वह किसी तरह भी रखने लायक़ नहीं है।"

खज़ांची की पत्नी बानो, भीतर से सब कुछ सुन रही थी। तुरंत ही बाहर निकल आई। बीच ही में बोल उठी—"पहले ही यह बात नहीं कह दी थी मैंने ?"

खज़ांची ने उसे चुप रहने का संकेत देकर सलीमन से पूछा—"क्यों, बात क्या है ?"

"वह रुक्नुद्दीन की एक हीरे की अँगूठी चुराकर लाई है। शाह तुर्कान को वह अंगूठी दुआ पढ़कर किसी औलिया फ़क़ीर ने दी है। वह उस अँगूठी के लिये बहुत बेचैन हैं। कहती हैं, उसके चले जाते ही यह संकटों का पर्वत उनके ऊपर टूट पड़ा है।"

बानो बोली—"मैं उसकी शकल-सूरत देखकर ही उसके रंग-ढंग ताड़ गई थी। अच्छा किया, मैंने उसे यहाँ बंद करवा दिया। अगर खुली हुई छोड़ देती तो अवश्य वह हमारे यहाँ से भी कुछ क़ीमती सामान साफ़ कर ले जाती।"

खज़ांची तेज़ होकर बोला—"नहीं, शाह तुर्कान झूठी औरत है। रुक्नुद्दीन ने सकीना के साथ विवाह कर लेने का वादा किया है। उसी वादे पर मुहर लगाने के लिए उसने उसे अपने हाथ की अँगूठी पहनाई।"

सलीमन बोली—"पर उसकी माँ कहती है, सकीना ने उसे ख़ूब शराब पिला उसको नशे में बेहोश कर उँगली से अँगूठी निकाल ली।"

"दाई, तुम अपने साथ ही ले जाओ उसे। ऐसी भयानक नारी को मैं अपने यहाँ जगह नहीं दे सकती। मैं अभी ताला खोलकर उसे निकाल तुम्हारे साथ कर देती हूँ।"

सलीमन बोली—"रानीजी ! मुझे अपना ही पेट पालना कठिन है। मैं कहाँ ले जाऊँ उसे ? शाह तुर्कान ने सिर्फ अँगूठी माँगी है। आप अँगूठी लाकर मुझे दे दें तो मैं उसे बड़ी सुरक्षा के साथ पहुँचा दूँगी उनके पास।"

"अँगूठी किसी तरह नहीं देगी वह। उँगली से निकालकर देखने को ही नहीं देती।"

"शाह तुर्कान कहती हैं, अगर वह अँगूठी मुझे वापस मिल जाय तो अभी मेरे कारागार के दरवाजे खुल जाय, बेड़ियाँ टूट जायँ। रज़िया से कह दो मुझे राजपद का कोई लालच नहीं है। केवल इस बन्धन से छुटकारा चाहिए। खुली हवा चाहिए, धूप चाहिए। कुछ लोगों का लेना-देना है। उसे बराबर कर अनंत निद्रा में सो जाने के लिए गज़भर भूमि चाहिए।"

ख़ज़ांची ने कहा–"नहीं, अँगूठी नहीं दी जायगी। शाह तुर्कान ने बडे असभ्य पाप किए हैं। उनके प्रायश्चित के लिए केवलमात्र कारागार ही एक स्थान है। उसे उसी अंधकार में घुट-घुटकर मर जाना होगा।"

बानो बोली–"अँगूठी देनी पड़ेगी। वह अँगूठी यदि किसी के लिए सौभाग्य को देनेवाली है तो हमारे लिए दुर्भाग्य-दायक भी हो सकती है। एक दासी की उँगलियाँ उतनी बहुमूल्य अँगूठी के लिये नहीं बनाई गई हैं।"

सलीमन ने कहा–"शाह तुर्कान उसके बदले में बहुत-सा सोना दे देने को कहती हैं।"

ख़ज़ांची बोला–' नहीं बानो, अगर उस अँगूठी में औलिया की सच्ची दुआ है और हम उसे शाह तुर्कान के पास भिजवा देते हैं तो हम सुलताना रज़िया के विरुद्ध:विद्रोह में शामिल होते हैं। फिर हमें भी किसी कारागार की शोभा बढ़ानी होगी।"

अब तो बानो को भी पति का पक्ष लेना पड़ा–"सुलताना रज़िया का राज्य शाह तुर्कान के राज्य से बहुत अच्छा है।" एक सिपाही को उधर आता देखकर बानो ने जल्दी-जल्दी कहा–"लौट जाओ दाई! अगर तुम उस औरत की ज्यादा भलाई सोचोगी तो हम सबके लिए संकट पैदा हो जायगा।" बानो सिपाही के आने तक भीतरु चली गई।

सिपाही ने आकर कहा–"ख़ज़ांची साहब, आपको अभी सेनापति ने याद किया है। सुलताना रज़िया से भेंट करनी आवश्यक है।"

ख़ज़ांची ने भीतर जाकर तुरन्त ही कपड़े बदले। बानो से कहा–"मैं जा रहा हूँ।"

बानो उसे पहुँचाने द्वार तक गई। दाई अभी तक वहीं खड़ी थी। ख़ज़ांची सिपाही के साथ चला गया।

"क्यों तुम अभी तक यहीं खड़ी हो ?"

"रानीजी, जरा मैं भी तो उसकी शकल देख लूँ। उससे दो बातें कर मैं पता लगा लूंगी, वह अँगूठी चोरी की है या विवाह की।"

बानो के सिर पर वह नारी तीक्ष्ण काँटों का पर्वत होकर बैठी थी। मन-ही-मन उसने सोचा–"अगर यह दाई इस औरत को यहाँ से ले जाने को तैयार हो जाती तो क्या बुरा था ? उसने प्रकट में कहा–"हाँ-हाँ, क्यों नहीं बड़ी खुशी से। तुम उससे बातें क्या, अफ्ने साथ ले भी जा सकती हो उसे, पर तुम्हारे साहस ही नहीं इतना।"

"साहस हो जायगा। उसके पास तो ले चलिए।"

बानो उसे भीतर ले गई और उसके कमरे का ताला खोलने लगी। दाई ने धीरे-धीरे पूछा–"क्यों ताला क्यों लगा दिया ?"

उसके ताला खोलते ही। बाहर द्वार पर किसी ने साँकल झनझनाई। बानो वहाँ चली गई और दासी ने सकीना के कमरे में प्रवेश किया। वह एक चारपाई पर पड़ी सो रही थी। एक अपरिचित को आया देख उठ गई– "कौन ?"

"तुम्हारी मौसी सलीमन।"

"इस नाम के साथ यह संबंध तो आज ही सुन रही हूँ।"

"तुम्हारे पास रुक्नुद्दीन की अँगूठी है ?"

"तुमसे किसने कहा ?"

"मैं तुम्हारी भलाई के लिए आई हूँ। मुझसे सवाल पूछने से अच्छा है, तुम मेरे सवालों का जवाब दो। है तुम्हारे पास अँगूठी ?"

"है।"

तुम्हें कैसे मिली वह ?"

"स्वयं सुलतान ने दी, रुक्नुद्दीन ने।"

"वह तो कारागार में है।"

"मैं भी तो यहाँ बंदिनी ही हूँ।"

"उसने किसलिए दी यह अँगूठी ?"

सकीना फफक-फफक कर रोने लगी। सलीमन अब चारपाई पर बैठकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। उसने उसके आँसू अपने दुपट्टे में ले लिए—"क्यों बेटी, रोने क्यों लगी ?"

"मेरा खोटा भाग ! राजकुमार ने मेरे साथ विवाह के वचन को पक्का करने के लिये यह अँगूठी पहनाई थी। मैं क्या जानती थी, शीघ्र ही उन्हें बन्दी बना लिया जायगा।"

सलीमन ने उसकी ओर से मुँह फेरकर कहा—"झूठी कहीं की !"

"क्यों मुझसे झूठी कहती हो ?"

"नहीं, शाह तुर्कान से कहती हूँ, उसने तुम पर लांछन लगाया है। कहती थी, तुमने उसके बेटे को शराब में अचेत कर दिया और अवसर पाकर उँगली से अँगूठी उतार ली।"

वह फिर रोने लगी—"ऐसी झूठी औरत कारागार में क्यों, नरक में जाती।"

सलीमन उसकी सरलता और सुंदरता को देखकर लोभ में पड़ गई। सोचने लगी—"क्यों न इसकी मदद कर इसे अपनी बना लूँ। किसी अच्छे घर में इसका विवाह करा दूँगी तो इसके भी दिन सुख-चैन से कटेंगे और मेरा बुढ़ापा भी कुढ़ते हुए बीतने से बच जायगा।"

"बेटी, धीरज रक्खो, मुझसे जो भी मदद होगी तुम्हारी, मैं पीछे नहीं हटूँगी। भगवान् चाहेगा तो अब तुम्हारे अच्छे दिन दूर नहीं हैं।"

"तब क्या तुम मुझे राजकुमार रुक्नुद्दीन से मिला न दोगी ?"

"मेरी राय मानो तो तुम उनका विचार ही छोड़ दो।"

'ऐसा क्यों कहती हो मौसी ? मेरे जगत् में अंधकार छा जायगा ।" बड़ी उद्विग्नता के साथ वह चारपाई छोड़कर उठ खड़ी हो गई ।

"ठीक ही कहती हूँ कि तुम्हें फिर पछताना न पड़े ।"

"क्या उन्हें क़ैद से छुड़ा सकने का कोई उपाय नहीं ?"

"नहीं, और उस प्राणघातक बीमारी से भी नहीं, जिसने उनके रग-रग में अधिकार कर लिया है ।"

सकीना मुँह लटका सिर हथेली में लेकर भूमि पर बैठ गई । सलीमन ने उसे फिर चारपाई पर बिठा दिया । उसकी अँगूठी का हीरा अब सलीमन की आँखों में चमक उठा—"भाग्य ने जिसका राजमुकुट छीन लिया और शराब जिसके स्वास्थ्य को पी गई, उस बन्दी राजकुमार का लालच छोड़ दो, उसकी अँगूठी लौटा दो । मैं किसी अच्छे युवक से तुम्हारा विवाह करा दूँगी । वह तो अब उस कारागार से बाहर जीवित नहीं निकल सकता ।"

"मुझे भी इसी कारागार में मरने दो ।"

"तुम यहाँ से चलना चाहती हो, तो चलो अभी मेरे साथ ।"

"अभी क्या !"

"हाँ, क्यों नहीं ?" विश्वास की दृढ़ता के स्वर में सलीमन ने कहा ।

सकीना ने उसके पैर पकड़ लिए—"तुम सचमुच ही मेरी मौसी हो । चलो, ले चलो । मुझे यहाँ से निकालो । मुझे तुम्हारे साथ भूमि पर सोना और रूखी रोटी खाना स्वीकार है ।"

उसी समय बानो वहाँ पर चली आई । जान पड़ता था, वह निकट ही कहीं पर से उनकी बातें सुन रही थी । बोली—"क्या तय किया तुमने ?"

"तय कैसा ?"

बानो ने अब सकीना की तरफ मुँह कर कहा—"क्यों सकीना, तुम्हें यहाँ क्या तकलीफ़ है ?"

"आप ऐसा क्यों कहती हैं ! तकलीफ़ मुझे है या आपको ?"

"मेरा मतलब है, तुम जाना चाहती हो तो जा सकती हो। तुम्हारी मौसीजी क्या कहती हैं?"

"कह तो रही हैं, अभी चलो।"

"तुम्हारी इच्छा है तो जा सकती हो।"

सलीमन बोली—'ख़ज़ांची साहब से भी तो पूछना पड़ेगा।"

"उनके साथ कुछ देना-लेना तो है नहीं। मैं कह दूंगी, सकीना की मौसी उसे ले गई।"

बानो ने बड़ी प्रसन्नता से उसे बिदा दे दी। अशर्फियों की सुराहियाँ उसने पहले ही अपने अधिकार में रख ली थी। फिर खज़ांची पति के शेष असंतोष को वह सहन कर ही लेगी।

१६

रज़िया सुलताना को उसके विरुद्ध उठनेवाले विद्रोह की गंध बहुत पहले ही मिल गई थी। यह उन चालीसों तुर्की सरदारों द्वारा फैलाया गया था। वह उनकी ओर से असावधान नहीं थी। वह जानती थी, वे किसी समय उसके विरोध के लिए तैयार हो सकते हैं। इसीलिये उसने उन्हें राज्य के किसी भी महत्वपूर्ण पद पर एकाधिकारी होकर नहीं रहने दिया। उसने राज्य के उन स्थानों में धीरे-धीरे अपने विश्वस्त व्यक्ति रख दिए, और जब-जब वे खुलकर उसका विरोध करने लगे तो रज़िया ने अपने सभी स्वामिभक्त अधिकारियों को परामर्श के लिए बुलाया।

सेनापति ने कहा—"सुलताना, आप क्यों चिंता करें? हमारी भरीपूरी सेना है। दुर्ग की दृढ़ता में कोई संदेह नहीं। सिपाही अपनी शक्ति के संचालन में प्रवीण हैं और राजसिंहासन के लिए उनकी जो भक्ति है, उसमें कोई कृत्रिमता नहीं। सेना और पशुओं के लिए अनाज और दाने-घास का पूरा-

पूरा प्रवन्ध है। प्रजा के हित के लिए ही आपने राजदंड धारण किया है, फिर क्यों न भगवान् का आशीर्वाद आपके साथ होगा। आप सारी रात चिंताओं में जागती रहती हैं। इसका प्रभाव आपके स्वास्थ्य पर पड़ सकता है। फिर हमें कैसे सही-सही मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा?"

रज़िया बोली—"आपकी वीरता और आपकी सैन्य-शक्ति का मुझे पूरा भरोसा है, पर राजसिंहासन पर बैठनेवाले के लिए चैन की नींद एक असंभव कल्पना है। चिंताएँ आप-से-आप आकर मेरे आगे अंधकार फैला देती हैं। राजधानी में, सीमाओं पर और प्रांतों में हमारे विरोध की आग बढ़ानेवाले क्या कुछ कम हैं?"

"राज्य की रक्षा का भार सब सेनापतियों के ऊपर है। व्यवस्था और सुशासन के सूत्रों के लिए मंत्रियों का उत्तरदायित्व है। सुलतान के सामने उन की मृत्यु-शय्या पर हमने जो प्रतिज्ञा की थी, हम उस पर से विचलित नहीं हो सकते, नहीं हमें नारी के राजसिंहासन से ही कोई विरोध है।"—एक मंत्री ने कहा।

खज़ांची बोला—"उन उनतालीस सरदारों को एक सरदार करीमशाह ने ही बहकाया है। करीमशाह को कुछ दिन पहले तक आपसे कोई भी शिकायत नहीं थी।"

"पर मैं राजमुकुट धारण कर किस-किस की महत्वाकांक्षा को कहाँ-कहाँ तक पूरी कर सकती हूँ?"

बशीरुद्दीन ने पूछा—"क्या प्रधान सेनापति का पद चाहते थे या?"

एक मंत्री ने उनका वाक्य पूरा किया—"प्रधान मंत्री का?"

रज़िया ने उत्तर में कहा—"नहीं, और भी गंभीर पद।"

"क्या लाहौर की सूबेदारी चाहते थे?"

"नहीं, मैंने जो मरते समय अपने पिता से प्रतिज्ञा की थी, उसे तोड़ देने को कहते थे।"

सभी लोग रज़िया के कहे हुए थोड़े शब्दों में करीमशाह का बड़ा मतलब समझ गए।

रज़िया ने उस प्रकरण को बदलते हुए कहा—"सेना को समय पर उसका वेतन मिल जाना चाहिए। तभी उस पर राज्य का अंकुश रहेगा और तभी वह प्रजा के हित में सन्नद्ध रहेगी।"

ख़ज़ांची ने उत्तर दिया—"हाँ, नई टकसाल शीघ्र ही अपना काम आरंभ करनेवाली है।"

प्रधान मंत्री ने पूछा—"नए सिक्कों में लेख क्या रहेगा ?"

दूसरे मंत्री ने प्रस्ताव किया—"एक ओर सुलताना का नाम तो रहेगा ही।"

"दूसरी ओर ?"

रज़िया—"सुलतान के सोचे हुए वे शब्द, उनसे बढ़कर और क्या हो सकता है ?"

प्रधान मंत्री—"वे शब्द कौन-से हैं ?"

रज़िया ने उत्तर में कहा—"आनन्द-विलास केवल भगवान् के लिए।"

प्रधान मंत्री—"उत्कृष्ट ! सिक्कों के लिए इनसे सुन्दर और शब्दावली हो ही क्या सकती है ?"

ख़ज़ाँची शराब की सुराहियों में छिपाकर लाई हुई उन अशर्फ़ियों को भूल गया और बोला—"सिक्का ही हमें नरक का मार्ग दिखाता है और उसी से हमें स्वर्ग की शरण मिलती है।"

रज़िया—"समय के अंक भी उसमें होने आवश्यक हैं।"

ख़ज़ांची—"क्यों नहीं ? पहले साँचा बनवाकर आपकी स्वीकृति ले ली जायगी।"

रज़िया—"राज्य को स्थिर रखने के लिए जिस प्रकार, सेना आवश्यक है, उसी तरह सेना को कायम रखने के लिए सिक्का।"

प्रधान मंत्री—"झंडे की रूप-रेखा में कोई परिवर्तन ?"

रज़िया–"परिवर्तन कुछ नहीं, जैसा सुलतान के समय में था, आधा लाल और आधा काला।"

सेनापति–"शाह तुर्कान ने उसमें जो परिवर्तन किया था, वह किसी को अच्छा नहीं लगा।"

रज़िया बोली–"और कोई आवश्यक समस्या जो हल होने से रह गई हो ?"

याकूत ने कहा–"प्रजा की शिकायत सुनने के लिए आपने जो घंटी लगाई है, मुझे फिर उसी की शिकायत है।"

एक मंत्री बोला–"ठीक है, सुलताना का अंगरक्षक होने के नाते तुम्हारी यह शिकायत उपयुक्त ही है।"

प्रधान मंत्री ने कहा–"मैं भी समझता हूँ, बिना छान-बीन किए हर एक शिकायत करनेवाले को महल तक प्रवेश मिल जाना संकट की बात है।"

रज़िया ने पूछा–"किस प्रकार ?"

सभी ने याकूत की बात का समर्थन किया। अन्त में यह निश्चय किया गया कि प्रवेश-द्वार पर शिकायत करनेवालों की अच्छी तरह जाँच की जाय। तभी यदि उन्हें उपयुक्त समझा जाय तो आगे बढ़ने दिया जाय।

याकूत केवल इतने से ही संतुष्ट नहीं हुआ और बोला–"शिकायत करनेवालों के लिए एक समय निर्धारित किया जाय। ऐसा नहीं कि दिन-रात के घंटों में जब उनका जी चाहे वे घंटी को बजाना आरंभ कर दें।"

याकूत का यह प्रस्ताव भी सभी ने मान लिया। शीघ्र ही यह राजाज्ञा प्रचारित कर देने का निश्चय किया गया। सभा विसर्जित हो गई।

रज़िया ज्योंही सबको विदाकर अपने प्रासाद में जाने लगी तभी एक दासी ने आकर निवेदन किया–"सरकार, शिकायत की घंटी बज रही है।"

"अब यह एक नियत समय में ही बजा करेगी, हर समय नहीं। उस समय की परिधि से बाहर इस अंतिम व्यक्ति को बुलाकर ले आ। चाहे मैं दिन-भर के श्रम से कितनी ही क्लांत न हो गई हूँ।"

दासी अपने साथ अस्त-व्यस्त केश और मलिन वेश-धारिणी एक नारी को बुलाकर ले आई। उसने अभिवादन के लिए रज़िया को जो मस्तक भूमि पर झुकाया था, उसे फिर नहीं उठाया--"आपकी जय हो। शत्रुओं का विनाश हो।"

बचपन में बहुत समय तक उसने रज़िया की रेख-देख की थी उसे भूमि पर ही पड़ा देखकर रज़िया द्रवित हो उठी। अपने हाथ से उसका सिर उठाकर बोली-"क्यों री सलीमन, क्या हो गया तुझे !"

"वह चुड़ैल शाह तुर्कान, आपने क्यों भेजा मुझे उसके इलाज के लिए ?"

"क्यों, कैसी है अब वह ?"

"आपकी क़ैदी है वह।"

'इसमें संशय कुछ नहीं, पर क्या हमें शत्रु के ऊपर भी दया करनी नहीं है ? मैं पूछती हूँ, वह कैसी है अब ?"

"मेरी मालिश से उसके पेट की पीड़ा तो अब ठीक है, लेकिन मुझे उसके दिमाग़ में गड़बड़ जान पड़ती है और उसके लड़के की तबीयत भी बहुत ख़राब हो गई है।"

"क्या हो गया उसे ?"

"वह चौबीसों घंटे शराब में धुत्त रहनेवाला, इतने दिनों से उसकी कोई भी बूँद न पा सकने के कारण ऐसा हो गया, या भगवान् जाने। उसके अंग में बड़े-बड़े फफोले पड़ गये हैं। कुछ पक भी गये। बड़ी दुर्गंध आती है, उसके निकट जाने में। आप मुझे क्षमा करें, तो मेरी जान छूट जाय। मैं न जाऊँगी अब उसकी मालिश करने।"

"यह उपकार न तो तुम उसके लिए कर रही हो न मेरे लिए। तुम्हारे ही परलोक के लिए है, यह जो कुछ भी है।

"मुझे अपने परलोक की इतनी चिंता नहीं है, जितना आपके उस कारा-

गार के नरक बन जाने की है। उन दोनों को वहाँ से निकाल बाहर कीजिए। आपके महल के इतने नज़दीक !"

"नहीं-नहीं ! उन्हें मुक्त कर देने से सारे राज्य पर संकट छा जायगा। वह जादूगरनी है, वह डायन है। उसने बीमारी का बहाना रक्खा होगा। वह बड़े करतब जानती है। उसने बहुत दिनों तक सुलतान को अपने जादू से बाँध रक्खा था। अगर मैं तुम्हारी बात मान लूँ तो वह छूटते ही सारी दिल्ली में विद्रोह फैला देगी।"

"नहीं सुलताना, अब उसका वह तेज़ चला गया। उसका बेटा संसार में कुछ ही दिनों का मेहमान जान पड़ता हैं। वह मरा नहीं कि उसके लिये रो-रोकर वह भी जान दे देगी। आपकी बड़ी बदनामी हो जायगी। उस पर दया कीजिएं।"

"क्या दया करूँ ? उसने राजभवन और राजधानी के कितने ही लोगों को मौत के घाट उतार दिया। मेरे भाई की आँखें निकलवाकर उसे मरवा डाला। उस पर दया यही है, तू जाकर उसका इलाज कर। नहीं तो दिल्ली के किसी अच्छे हकीम से उसे अच्छा कराऊँगी। मैं उसे मरने न दूँगी, अच्छी भी न होने दूँगी। उसे तिल-तिल घुलकर मरना देखना चाहती हूँ। जा, जो कहा गया उसे पत्थर की लकीर समझ।"

सलीमन चली गई। उसके जाते ही याक़ूत ने आकर कहा—"सुलताना इस औरत को तुम क़ैदियों के पास भेजकर कोई भूल तो नहीं कर रही हो ? वह इसके मारफत अपने बाहरी लोगों से मदद ले सकती है।"

"इसकी गति-विधि पर कड़ी दृष्टि रखने के लिये अनेक प्रहरियों के घेरे के बाद मसऊद हमारा स्वमिभक्त सेवक वहाँ मौजूद है।"

सलीमन रज़िया के पास से सीधे अपने डेरे पर जा पहुँची। नीचे एक सुनार की दुकान थी। उसकी ऊपरी मंज़िल में उसके बाल-बच्चे रहते थे। दुकान के पीछे एक कोठरी में सलीमन रहती थी। कोठरी के बाहर चारदीवारी से घिरा हुआ आँगन था। आँगन के एक कोने में छप्पर डालकर सलीमन का चूल्हा जलता था।

डेरे पर पहुँचने का रास्ता पिछले हिस्से से ही था। सलीमन ने देखा, आँगन का दरवाजा बाहर से बंद है। उसमें साँकल पड़ी है, ताला लगा है। उसकी साँस जहाँ-की-तहाँ रह गई–"अरे यह लड़की तो मेरी भी उस्ताद निकल आई। मैं इससे अपना काम बनाने लाई थी, वह मेरी ही हजामत बनाकर चल दी क्या? वह मेरा ही लटा-पटा साफ कर ले गई होगी?"

वह सुनार की दुकान में जाकर कुछ बात कर आई। लौटी तो देखा, कोई बुर्क़ा पहने ताला खोल रही है। सलीमन ने उसका बुर्क़ा उठाकर कहा– सकीना? बेटी, यह क्या! तुझे मैं नौकरानी बनाने यहाँ लाई हूँ?"

"मौसी, बैठी-बैठी और करती भी क्या? मैंने देखा, घड़ा खाली था। पास ही तो कुआँ है, भर लाई। मैं तो इसके बाद चूल्हा जलाकर रोटी बनाने की चिन्ता में थी। पास-पड़ोस में न जाने कौन कैसा है, इसी से आग लाने की हिम्मत न हो सकी।" वह घड़ा उठाकर भीतर जाने लगी।

मौसी ने रोक लिया–"नहीं सकीना, आग-पानी कुछ नहीं। मैं किस लिए हूँ? मैं तुम्हारे ऊपर किसी की भी नज़र, चाहे अच्छी हो या बुरी, पड़ने ही नहीं देना चाहती हूँ।"

"मैं इसीलिये बुर्क़ा पहनकर गई थी।"

"उससे और भी लोगों का कौतूहल बढ़ जाता है। बाज़ार का सौदा-पत्ता, साग-सब्ज़ी, आग-पानी, सब कुछ जैसा मैं करती आई हूँ, करती रहूँगी।"

"मैं बैठे-बैठे रानी बनकर खाऊँगी क्या?"

"अपने लिए तो करती ही हूँ। और दो रोटियाँ सक लेने में क्या मुझे चार हाथों की ज़रूरत पड़ जायगी?" सलीमन ने घड़ा भीतर रख दिया।

"रोटियाँ मैं सेकूँगी। मेरे हाथ की बनी मछली एक दिन खाओ तो सही।"

"अच्छा, मैं बाज़ार से ले आती हूँ। ख़ूब बढ़िया बनाओ, रुकुद्दीन के लिए ले जाऊँगी। कहूँगी, यह उसकी होनेवाली बेगम ने भेजी है। उनकी तबीयत ठीक नहीं है।"

सकीना ने चिंतित होकर पूछा–"क्या हो गया ?"

"कोई गहरी बीमारी लग गई।"

"रज़िया को उनका इलाज कराने की क्या पड़ी है ? पर मौसी, तुम कहती थीं शाह तुर्कान के इलाज के लिये उन्होंने ही तुम्हें भेजा है।"

'हाँ, शाह तुर्कान रात-भर पेट पकड़ रज़िया बेगम पर गालियाँ बरसा रही थी। उनकी गालियों से डर गईं सुलताना। अब तुम इसे रहम समझो चाहे वहम !"

'राजकुमार के इलाज के लिये कोई प्रबन्ध नहीं कर सकती हो क्या ? उनकी बहुत-सी अशर्फियाँ ख़ज़ांची साहब बचाकर ले गए हैं।"

"पर न ख़ज़ांची ही कोई फूटी कौड़ी देगा, न कोई हकीम ही दवा की पुड़िया, क्योंकि वह रज़िया बेगम का क़ैदी है, उसके राजमुकुट का दावेदार। सुलताना क्यों उसका नीरोग होना पसन्द करेगी ?"

'मौसी, मुझे ले जा सकती हो उनके पास ? अभी नहीं तो कुछ दिन बाद सही।"

"पर तुम वहाँ कैसे जाओगी ? बहुत बीमार हैं वह।'

"मैं अच्छा कर लूंगी उन्हें।"

'तुम कोई वैद्य या हकीम हो ? हाँ, एक बात, शाह तुर्कान कहती हैं, यह जो हीरे की अँगूठी है, इसमें किसी फक़ीर की दुआ है। इसी के खो जाने से उनका बेटा बीमार हुआ है। अगर यह फिर उनकी उँगली में पहुँच जाय, तो वह भले-चंगे हो जायँ। लाओ, यह अँगूठी उन्हें पहनाकर इस बात की जाँच कर लें।"

"पर यह अँगूठी तो मेरे विवाह की है।"

"जब वे ही नहीं रहे तो विवाह कैसा ?"

"चलो, फिर अँगूठी के साथ मुझे भी ले चलो।"

"तुम्हें कोई सिपाही नहीं जाने देगा।"

सकीना ने अपना हाथ उस अँगूठी पर निकालने के लिए रक्खा। ❁

२०

राज-सभा में प्रधान मंत्री और प्रधान सेनापति सुलताना रज़िया के साथ कुछ गोपनीय परामर्श करने के लिए बुलाए गए हैं। उन्हें रज़िया की प्रतीक्षा है।

प्रधान मन्त्री ने धीरे-धीरे कहा—"सुलताना को बहुत पहले ही यह ज्ञात था कि भटिंडा का सूबेदार विद्रोह के लिये तैयारी कर रहा है।"

सेनापति ने मंत्री के कान में मुँह ले जाकर कहा—"जब उसका मन सुलताना के मन में न समा सका, तभी तो।"

"समा जाता तो यह स्थिति न होती।"

"बीच में काला-कलूटा याक़ूत।"

"कहने को तो सब यही कहते हैं, पर मुझे विश्वास नहीं।"

इतने में दूरी पर नक़ीब की आवाज़ सुनाई दी—"सचेत ! सावधान ! सुलताना की सवारी आ रही है ऽ ऽ ऽ ऽ!"

रज़िया के दरबार में प्रवेश करने पर सबने उठकर और झुककर सुलताना के प्रति आदर-सत्कार प्रकट किया। वह पूरे मर्दाने वेश में थी। सिर के बाल मुँडासे के भीतर ऐसे कसकर बाँध दिए गए थे कि उनका अस्तित्व ही संकट में पड़ गया था। उसके गले में मोतियों की माला छोड़कर और अंग पर कोई भी आभूषण नहीं था। कमर में पेटी से खड्ग लटक रहा था और उसमें एक कटार भी खोंस दी गई थी। उसके कन्धे पर एक तरफ गैंडे की खाल की ढाल बँधी थी, और दूसरी ओर धनुष और तरकस था।

सिंहासन पर विराजमान होकर रज़िया ने कहा—"वह एक छोटा-सा कीड़ा अलातूनिया ! सुलेतान इल्तुतमिश ने उसे जागीर देकर उसका दरजा बढ़ाया, उसकी वीरता की बड़ाई कर उसे अभिमानी बनाया, और आज वह

अपने को इतना बड़ा समझने लगा कि उसने दिल्ली पर चढ़ाई करने की ठान ली !"

सेनापति ने कहा–'हम उसका सामना करने में क्यों साहस-हीन होवें ? हमने उसको मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए पूरी तैयारी कर ली है। केवल घोर पश्चात्ताप के उसे यहाँ कुछ भी मिलनेवाला नहीं।"

मंत्री ने सेनापति की हाँ-में-हाँ मिलाकर कहा—"सेना में अतिरिक्त भरती भी की जा चुकी है। क़िले के भीतर अन्न के गोदाम भरे-पूरे हैं। पिछली बरसात में उसकी जो दीवारें जहाँ भी गिरी-पड़ी थीं, वे सब उठाकर सही कर ली गई हैं।"

रज़िया बोली—"आपने हमारी शक्ति की इतनी दुर्बल कल्पना की, आश्चर्य है !"

रज़िया के इस वक्तव्य को सुनकर सारी सभा के मुख पर बड़ा विस्मय अंकित हो गया। सब मूक रहकर एक-दूसरे का मुख देखने लगे।

रज़िया ने फिर कहा—"कदाचित् मेरे कहने का मतलब ख़ुला नहीं। ऐसा जान पड़ता है, दुर्ग के भीतर तक अपने शत्रु की चढ़ाई सोच ली है। आपने जो दुर्ग की दृढ़ता की है, इसी बात की साक्षी है। क्या दुर्ग के भीतर से आप दुश्मन का सामना करेंगे ?"

इसी समय शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर याकूत भी सभा-भवन में चला आया। उसके कन्धे पर रज़िया के कवच की शृंखलाएँ उसकी चाल के ताल में झंकृत हो रही थीं। वह बड़े शिष्टाचार के साथ एक ओर खड़ा हो गया। सुलताना ने उसे अपनी ओर इशारा किया। वह उधर जाकर बैठ गया।

"हम दिल्ली के द्वार पर उसकी प्रतीक्षा करें, यह लज्जा की बात है। उसे तो भटिंडा के दुर्ग से बाहर निकलते हमें रोक देना था। उसकी सेना को चींटियों की तरह कुचल देना था। अब वह बहुत आगे बढ़ चुका होगा।"

मंत्री ने कहा—"गुप्तचर को यह समाचार लाते-लाते बड़ा विलम्ब हो गया !"

याकूत बोला—"सुलताना, अब भी किसी संकट की बात नहीं। सेना तयार है। हम रात में ही उससे मोरचा ले लेंगे। हमें कूच की आज्ञा मिल जाय।"

"मैं स्वयं सेना के साथ चलूंगी।" रज़िया उठ खड़ी हो गई।

उसका संकेत पाकर याकूत उसे कवच पहनाने लगा। उसके अंग पर जब वह हबशी कवच की श्रंखलाएँ जोड़ रहा था भरी सभा में, तब बहुतों के द्वेष जाग उठा और अनेकों ने लज्जा से अपनी दृष्टि दूसरी ओर कर ली।

प्रधान सेनानायक और मंत्री के साथ दूसरे सरदारों को भी कूच के लिए तुरन्त ही तैयार हो जाना पड़ा।

बीच ही में सेनापति ने कहा—"सुलताना, आपके जाने की ऐसी क्या विशेष आवश्यकता है? अन्ततः आप हैं तो महिला ही न। आप क्यों न राजधानी की ही सुरक्षा में रहें। राजधानी के भीतर भी तो हमारे शत्रु हैं।"

याकूत ने भी सेनापति की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा—"मैं भी यही उचित समझता हूँ, आप घर के भीतर के शत्रुओं को त्रास देती रहें यहाँ राजधानी में रहकर ही।"

रज़िया न-जाने क्या समझकर मान गई।

रण के बाजे ध्वनित और प्रतिध्वनित हो उठे। सेना अपनी सम्पूर्ण शक्ति से दिल्ली की ओर बढ़ते हुए उस विद्रोही के दमन के लिए चल पड़ी।

रज़िया ने उन्हें विदा देते हुए कहा—"एक क्षण भी विनष्ट करना नहीं है। विलम्ब होने से उसकी शक्ति और साहस बढ़ता जायगा। शीघ्र-से-शीघ्र उसकी दुःशीलता को कुचलकर रख दो। भगवान् आपका रक्षक हो!"

अचानक उसे कुछ दूसरा ही विचार सूझ गया। वह दुर्ग के परकोटे पर खड़ी होकर राज्य के लाल-काले झंडे को हिलाकर सेना को विदा कर रही थी, सहसा चिल्ला उठी—"सेना को रोक दो, ठहरो। मैं भी आती हूँ।"

याकूत उसके साथ-साथ दुर्ग से नीचे उतर आया। बोला—"सुलताना, अभी आप यहीं रहने का फैसला कर चुकी थीं।"

मैं उसे रद्द करती हूँ। मुझे जाना ही चाहिए इस समर में। कोई मेरे भीतर से पुकार-पुकारकर कह रहा है—"रज़िया, तुझे जाना ही होगा रण के बीच में। जाओ, मेरा घोड़ा ले आओ। सेना बहुत आगे बढ़ गई।"

याक़ूत तुरन्त ही दो घोड़े ले आया। दोनों घोड़ों पर सवार होकर तुरन्त ही सेना के पीछे चले।

कुछ ही समय बाद कारागार में रुक्नुद्दीन की मृत्यु हो गयी। चालीसों सरदारों को तूफान उठा देने के लिए अच्छा अवसर हाथ आ गया।

उनका प्रधान सरदार करीमशाह बोला—"राजा हो या रंक, पंडित हो या मूर्ख, मृत्यु सबको एक-सा बनाकर रख देती है। राजनीति के चक्र में फँसा हुआ रुक्नुद्दीन अवश्य ही एक क़ैदी था, पर था तो पराक्रमी सुलतान का ही पुत्र। कई महीने तक वह दिल्ली के राजसिंहासन पर नहीं बैठा था क्या? आज उसके मर जाने के बाद हमें इन दोनों बातों को भुला देना है। मर जाने पर वह सुलतान नहीं तो क़ैदी भी नहीं माना जायगा। एक साधारण मनुष्य की तरह उसकी शव यात्रा निकाली जाकर उसे दफ़नाया जायगा।"

दिल्ली के प्रमुख नागरिकों में उसका यह प्रस्ताव मान लिया गया। उस सरदार ने ही रुक्नुद्दीन की मिट्टी का सारा खर्च देना स्वीकार किया। कारागार के रक्षक को प्रजा के इस प्रस्ताव पर सहमत होना ही पड़ा। कारागार खोल दिया गया।

सकीना को जब यह समाचार मिला तो उसने सलीमन से कहा—"मौसी! चलो, मुझे भी ले चलो। क्यों नहीं मुझे भी एक बार अन्तिम बार उनका मुख देखना ही चाहिये। सभी लोग जा रहे हैं।"

सलीमन उस हीरे की अँगूठी को स्वयं ही पचा गई थी। वहाँ जाने से यह भेद खुल पड़ेगा, इस भय से वह सकीना को बराबर निरुत्साहित करती जा रही थी।

"मेरा कहना मान लो सकीना! वहाँ जाने पर तुम्हें पछताना पड़ेगा। शाह तुर्कान का दिमाग़ पहले से ही विकृत था। बेटे की मौत से उसका

पागलपन बहुत बढ़ गया है। न-जाने वह हमें कितनी ही गालियाँ न दे दे।"

"वह पगली ही ठहरी। उसके आशीर्वाद और गालियों में भेद ही क्या ?"

"अगर उसने कोई ईंट-पत्थर चलाकर हमारी हड्डी-पसली तोड़ दी, आँखें फोड़ दीं, तो क्या होगा ?"

"तुम्हीं ने मुझे बताया था, उनके एक पैर में बेड़ी पड़ी है। मुझे किसी तरह भी ले जाओ मौसी। तुम्हारे उपकार न भूल सकूँगी।

"तो मेरा बुर्क़ा पहन लो। दूर से राजकुमार का मुँह देख, अपना मुँह किसी को न दिखाकर, चली आना। किसी को किसी की बात का जवाब ही न देना। चलो।"

सकीना ने सलीमन की बात मान ली। दोनों चलीं।

उन चालीसों तुर्की सरदारों का यह षड्यंत्र था कि कारागार में रुक्नुद्दीन का शव उठाने के बहाने कुछ भीड़ इकट्ठी कर दी जाय और उस गड़बड़ में शाह तुर्कान को वहाँ से भगा दिया जाय कि वह राजधानी में रो-धोकर प्रजा को रज़िया के विरुद्ध भड़काकर वहाँ भी विद्रोह फैला दे।

शव उठाए जाने ही को था कि सकीना और सलीमन भी वहाँ जा पहुँचीं। शाह तुर्कान के बन्धन खोल दिए गये थे कुछ समय के लिए कि वह अपने पुत्र को अन्तिम विदा दे सके।

वह बेटे के लाश को पकड़कर अपनी छाती पीट रही थी। उसका पागल-पन पुत्र-शोक से द्विगुणित हो गया था। वैसी ही एक प्रेम की विक्षिप्तता सकीना के मानस में धनीभूत हो उठी। वह सलीमन के रोके नहीं रुकी। राजकुमार के शव पर रोती हुई टूट पड़ी—'हाय ! राजकुमार सुलतान रुक्नुद्दीन, बड़ा धोखा दिया तुमने। इस तरह मुझे छोड़कर चल दिए ! अब मैं किसके सहारे जीवित रहूँ ?"

शाह तुर्कान की उसके लिए समवेदना जाग उठी। उसने सोचा, मेरे ही दुख से दुखी यह कौन आ गई ?"

सलीमन उसके पीछे-पीछे आ उसे खींचकर ले जाने लगी। शाह तुर्कान ने पूछा—"क्यों री कौन है यह ?"

"मैं नहीं जानती।"

शाह तुर्कान ने ज़ोर से सलीमन की चोटी पकड़ ली—"झूठी, लबार कहीं की ! ठीक-ठीक बता नहीं, तो सिर से इस चोटी की जड़ ही उखाड़कर रख दूंगी। बता-बता, इसी का नाम है क्या सकीना ?"

"हाँ यही है।"

"पर अब बड़ी देर में लाई तू इसे ? कहाँ है मेरी अँगूठी ?"—उसने दाई की चोटी छोड़कर उसके सामने हाथ फैलाया।

"सलीमन को मानो काठ मार गया।"

तुर्कान ने फिर कहा—"ला मेरी अँगूठी।"

"खो गई।"

"किसने खोई ?"

सलीमन इसका उत्तर देने के बदले चुपचाप भीड़ में मिल बाहर खिसक गई।

शाह तुर्कान ने सकीना का हाथ पकड़ा। उसे कारागार के भीतरी अन्धकार में ले जाती हुई बोली—"भीतर चल बेटी ! अब ज्यादा मातम ठीक नहीं यहाँ पर। बाहर अर्थी उठाने के लिए लोग बेचैन हैं।"

शाह तुर्कान सकीना को भीतरी भाग में ले गई, जहाँ वह बँधी पड़ी थी। उसने अपने बंधनों में सकीना को कसकर बाँध दिया और उसका बुर्क़ा पहनकर बाहर आ गई शव के पास। सकीना शोक से विह्वल थी और पगली को मुक्ति और प्रतिहिंसा की आशा ने असाधारण शक्ति दे दी थी।

शाह तुर्कान की पकड़ से अर्थी को मुक्त पाकर लोग उसके वहाँ पर आने से पहले ही उसे उठाकर ले भागे। मृत्यु के उस भयानक दृश्य और लोगों की भीड़ से मसऊद भी घबरा उठा। उसने शाह तुर्कान को खंभे से बाँधने का काम अपने एक सहकारी को सौंप दिया था। सहकारी ने भी दो क़दम अर्थी में कंधा देकर जाना अपना धर्म समझा, मसऊद ने भी। शाह तुर्कान सकीना के बुर्क़े में अदृश्य हो भाग खड़ी हुई।

लोगों के जाने पर मसऊद कारागार के द्वार-तालों की चिंता में भीतर आया। रुक्नुद्दीन की अर्थी की खाली जगह पर कुछ देर के लिए खड़ा हुआ। उसने हाथों में अंजलि जोड़कर आकाश की और दृष्टि की ओर भगवान् से मृतक की आतमा के लिए शांति माँगी।

वह फिर उस भूमि पर झुका और फ़र्श की मिट्टी उठाकर उसने अपने सिर पर चढ़ाते हुए कहा—"हे भगवान्, हमारे घमंड को चूर-चूर कर। अन्त में हम सबको एक दिन इसी मिट्टी में सो जाना है। हमें माफ़ कर! हम इस सत्य को कभी न भूलें।"

उसने कारागार के भीतरी अंधकार में सकीना को खंभे से बंधा हुआ पाया। वह रोते-रोते थक गई थी। उसने समझ लिया साथी ने कैदी को ले जाकर बाँध दिया। उसने बंदीगृह के बाहर आकर उसके द्वार पर ताला जड़ दिया।

२१

अर्थीवालों की भीड़ में बहुत दूर तक चली गई शाह तुर्कान। बेटे का मोह छोड़कर उसे जाना ही पड़ा पकड़े जाने के भय से। वह रज़िया की खोज में चली।

अचानक किसी ने पीछे से आकर उसके हाथ पकड़ उसे झकझोरा। उसने उसका बुर्क़ा पहचान लिया—"सकीना! सकीना!"

"सकीना को शाह तुर्कान का तख़्त सौंप आई हूँ। चुपचाप मेरी बातों का जवाब दे। अगर तूने किसी पर मेरा भेद खोला तो तेरा गला घोंटकर मार डालूँगी। बता रज़िया कहाँ है?'

"अलातूनिया दिल्ली पर चढ़ आया है। वह उससे मोरचा लेने गई है।"

"खुद चली गई? बड़ी बहादुर है। मैं भी जाऊँगी।"

सलीमन ने पूछा—"सकीना कहाँ है?"

"नहीं समझी। मेरे बदले क़ैदख़ाने में है। अँगूठी उसकी किसी उँगली में नहीं मिली। मैं जानती हूँ, जहाँ भी है। अब मुझे उसकी कोई ज़रूरत नहीं है। दुआ किसके लिए माँगूँ ?"... शाह तुर्कान भागी चली गई।

अधिकांश में वीरता क्या साहस पर ही नहीं ठहरी है ? साहस क्या एक मानसिक संयोजना नहीं है ? भाइयों की अकर्मण्यता से सुलतान ने बचपन ही से रज़िया के भीतर पुरुष भावनाओं को जगाया था। फिर उसके भीतर शाह तुर्कान के अत्याचारों ने जो विक्षेप भर दिया था, उसने भी उसके मानसिक विकास को मदद दी थी।

सेना बिजली के वेग से आगे बढ़ी जा रही थी। उनका पीछा करते हुए रज़िया और याक़ूत को मार्ग-भ्रम हो गया। वे सेना को दूसरे दिन पकड़ सके। रज़िया को आया देखकर प्रधान सेनापति आश्चर्य में बोला—"फिर आप को आना पड़ गया !"

"हाँ, मेरा पहला ही विचार फिर सुदृढ़ होकर मुझे खींच ही लाया। शत्रु की सेना के क्या समाचार हैं ?"

"हमने चारों ओर गुप्तचर भेजे हैं, अभी कोई लौटा नहीं है।"

"सेना को कितने भागों में विभक्त किया है ?"

"गुप्तचरों के लौट आने पर जब हमें शत्रु के मार्गों का बोध हो जायगा, तब उसके अनुसार ही निश्चय करेंगे।"

रज़िया की सेना रात्रि में पड़ाव डाले हुए थी। वह बोली—"गुप्तचरों की प्रतीक्षा का कोई अर्थ नहीं। यदि वे सब-के-सब शत्रु द्वारा मार डाले गये हों तो ? मैं विश्राम का विरोध नहीं करती, पर जब शत्रु सिर पर हैं तो हमें श्रम में ही विश्राम ढूंढ़ना होगा, इसलिए कुछ रात रहते ही सेना को कूच कराइए। अब इसको दो भागों में बाँट देना है। आप अपने ही मार्ग से जाइए। दूसरे हिस्से का संचालन मैं करूँगी। मैं इधर से घूमकर जाउँगी कि हम शत्रु को घेर लें।"

बशीरुद्दीन बोला—"पर आपके जीवन का मूल्य अधिक है।"

"पर सुलतान ने मुझे रण की शिक्षा देने में जो रुपया और समय का

व्यय किया है, मुझे भी तो यह देखना और दिखाना है कि वह कहाँ तक ठीक हुआ है।"

रज़िया के हठ का कोई विरोध नहीं कर सका। सेना की दूसरी टुकड़ी उसके सेनापतित्व में दूसरे मार्ग से चली। याक़ूत उसका अंगरक्षक होकर गया।

अलातूनिया ने भी अपनी फ़ौज को दो भागों में बाँट दिया था। वह जिस टुकड़ी का नायक था, उसकी मुठभेड़ रज़िया द्वारा संचालित सेना से संभव जान पड़ी दूसरे दिन।

रात्रि में मार्ग के श्रम से रज़िया बहुत थक गई प्रतीत हुई। अपनी हठ और गौरव की रक्षा के लिए वह पड़ाव डालने के पक्ष में न हुई। रात में भी कूच जारी ही रखने की आज्ञा देने लगी।

याक़ूत ने विश्राम के लिए अंत में उसे राज़ी कर ही लिया। बहुत रात रहते जब वे फिर कूच करने की तैयारी में लगे तो याक़ूत बड़ी चिंता-भरी मुद्रा में रज़िया के पास जाकर खड़ा हो गया।

रज़िया एक पहर रात ही तैयार हो गई थी। याक़ूत को सामने उदास देखकर बोली--"आ गए याक़ूत, हाथी तैयार है क्या मेरा ?"

"हाँ, तैयार है, लेकिन मैं तैयार नहीं हूँ।"

"तुम्हारी तैयारी कैसी ?"

"अभी बताता हूँ।"

"गुप्तचर लौटा नहीं क्या कोई ?"

"लौटा है। शत्रु-पक्ष की गतिविधि देखकर उसका अनुमान है, अलातूनिया के नेतृत्व में जो सेना आ रही है, उसी के साथ हमारा संघर्ष होगा। अगला पड़ाव तबरहिंद है। बहुत संभव है, वही हमारी रण-भूमि होगी।"

"तब विलंब करना नहीं है। चलो।"

"मैंने एक युक्ति सोची है। हाथी पर तुम्हारे कपड़े, कवच और मुकुट पहनकर मैं बैठ जाऊँगा। साथ में तुम्हारा छत्र और झंडा भी मेरे ही साथ

होगा। मेरे कपड़े पहनकर मेरे अंग-रक्षक के स्थान में हाथी पर तुम रहोगी।"

"इसका लाभ क्या होगा ?"

"शत्रु अब निकट ही आ पहुँचा है। न-जाने क्यों आज मेरा जी घबरा रहा है। चिंता की छाया आपके मुँह में भी पड़ी है।"

"वह तो रात्रि-जागरण की है।"

"मेरी बात माननी चाहिए आपको। क्योंकि में आपका अंगरक्षक होकर आपके साथ आया हूँ।"

रजि़या ने भावावेश में कहा—"याकूत, मैंने तुम्हारे रंग को नहीं देखा, तुम्हारे हृदय को पहचाना।"

रजि़या के इस वाक्य में याकूत को उसकी मौन सम्मति मिल गई। तब उन दोनों ने उसी तम्बू में अपने-अपने कपड़े बदल लिए।

जब याकूत रजि़या के वस्त्र और शस्त्र धारण कर उसके हाथी पर सवार हुआ और रजि़या याकूत के वेश में उसके घोड़े पर चढ़ने गई तो जो जानता था उसी ने इस रहस्य को समझा, बाक़ी सब अन्जान ही रहे।

सेना बढ़ती गई। यह अनुमान सत्य ही प्रमाणित हुआ, तबरहिंद के रण,क्षेत्र में ही दोनों सेनाओं की भिड़ंत हुई।

सुबह से ही घमासान युद्ध होने लगा था। युद्ध-भूमि आहतों के रक्त से रंजित हो गई और घायलों की चीख़-पुकार से आकाश प्रतिध्वनित हो गया। पशु-पक्षियों, गिद्ध और सियारों के लिए उत्सव हो गया।

संध्या उतर चली। लड़ाकुओं का संघर्ष ढीला पड़ चला। विजेता इतनी जल्दी नहीं थक जाते जितनी जल्दी हार खाए हुए। जब अन्धकार बढ़ने लगा तो दोनों पक्षों के सैनिक और सेनापति अपना संग्राम समेटकर अपने-अपने डेरों में विश्राम करने चले गए।

युद्ध-क्षेत्र से कुछ दूरी पर एक घायल सिपाही लँगड़ाता हुआ युद्ध-भूमि से भागा हुआ चला जा रहा था। अन्धकार बढ़ गया था। कुछ दूरी पर उसे सिर पर की चादर के स्थान में फैले हुए बालों में दौड़कर आती हुई एक नारी

दिखाई दी। उसे देख वह घबराकर सोचने लगा–"यह क्या कोई भूतनी या पिशाचनी तो नहीं है, जो युद्ध में आहत मृतकों का खून चूसने आ रही है ?" वह मार्ग से हटकर एक ओर एक पेड़ के तने की ओट में हो गया।

उस औरत ने उसे छिपते हुए देख लिया था। वह उसकी टोह में चली उसी पेड़ की ओर। विशाल बरगद का वृक्ष ! उसके तने में एक खोह थी, पहले वह सिपाही उसके भीतर घुसने में डर गया और जब वह भूतनी उसकी खोज में वहीं तक आ गई तो उसने खोह में पैर बढ़ाया। खोह के भीतर जब कुँडवी मारकर सोया हुआ विषधर फुंफकारने लगा तो वह बाहर की ओर भागा। पर पैर में चोट होने के कारण भाग न सका और उस नारी ने उसे सहज ही पकड़ लिया।

"न-न, नहीं-नहीं, मैं जीवित हूँ। युद्ध के मैदान में तुम्हारे रक्त-पान के लिए अनेक शव पड़े हुए हैं।"

"अरे मूर्ख, तू क्या मुझे कोई भूतनी समझ रहा है ? मैं हाड़-माँस की ही एक नारी हूँ, जो एक आवश्यक काम के लिए आई हूँ। तू कौन है ?"

सिपाही चुप रहा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

"तू युद्ध की भूमि से भागकर चला जा रहा है। मैं तेरी कायरता को धिक्कार त दूँगी। लड़ाई इधर ही हो रही है क्या ?"

"हाँ, यही मार्ग है।"

"वह अभी चल ही रही है क्या ?"

"हाँ युद्ध के विश्राम की तुरही तो बज चुकी है। कुछ सैनिक अपने अपने डेरों में चले भी गये हैं। पर बहुत से अभी विजय की आशा में लड़ ही रहे हैं। तुम कौन हो ?"

"मैं सुलताना रज़िया की दासी हूँ। पिछले पड़ाव में वे अपनी अरिसंहार नामक कटार भूल आईं। उसी को लाने के लिए मुझे भेजा गया था। मैं राह भूल गई, अब पहुँची हूँ।" उसने कमर में से कटार निकाल कर उसे दिखाई।

सिपाही बोला—"मैंने तुम्हें युद्ध-भूमि का मार्ग बता दिया, सीधी चली जाओ। इसके बदले तुम मुझे दिल्ली का मार्ग बता दो।"

"यही तो है।" कहती हुई वह नारी बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ गई।

२२

रात्रि का अन्धकार गहन हो चुका था। दोनों पक्षों के सैनिक अपने-अपने डेरों में विश्राम करने चले गए थे। नौकर-चाकर चूल्हे जलाकर भोजन की व्यवस्था कर रहे थे। कुछ घायल सिपाहियों की मरहम-पट्टी की जा रही थी। जानवरों की पीठों पर से काठी, जीन और हौदे उतार दिए गए थे। वे अपने दाने-घास पर टूटे पड़े थे।

अलातूनिया के डेरों में विजय का उल्लास ध्वनित था। कहीं सुरा का चक्र चल रहा था, कहीं उमंग में भरे हुए लोग नृत्य और गीत में अपने को भूले हुए थे। इतनी सरलता से विजय-श्री उनको प्राप्त हो जायगी, इसका किसी को भी ध्यान नहीं था।

पर अलातूनिया ने बहुत उदास होकर अपने डेरे में प्रवेश किया। उसने अपने हाथ का खड्ग उठाकर बड़ी खिन्नता के साथ भूमि पर फेंक दिया। उसका एक सेवक, जो उसके कवच को नहीं खोल सका था, उसने उसे धक्का देकर हटा दिया और अपने ही हाथों से उसे अलग कर एक कोने में पटक दिया।

एक सेवक ने उसके अस्त्र-शस्त्र और कवच व शिर-त्राण उठाकर यथास्थान रख दिए।

दूसरा सेवक साहस कर बोला—"सरकार, युद्ध में आपकी विजय की अब कोई आशंका ही नहीं है।"

सेनापति आकर कहने लगा–"आपको विजय की बधाई है ! आपकी शत्रु युद्ध-क्षेत्र में मार डाली गई है। उसकी सेना तितर-बितर हो गई। अब कल को दिल्ली की चढ़ाई की आज्ञा दीजिए। हम इतनी सरलता से वहाँ से सिंहासन पर भी आपका प्रभुत्व स्थापित कर देंगे।"

अलातूनिया को दिल्ली का राजमुकुट कोई प्रसन्नता न दे सका। वह बड़े विक्षोभ से बोला–"लड़ाई के आरम्भ में ही यह राजाज्ञा बड़े स्पष्ट रूप से सबको सुना दी गई थी कि रज़िया को जीवित ही पकड़कर मेरे सामने लाया जाय।"

"युद्ध की उत्तेजना में आपकी आज्ञा भूल गई होगी।" एक सरदार ने उत्तर दिया।

"नहीं, राजाज्ञा बड़ी चीज़ है।। उसे जिसने तोड़ा है, उसे कड़ी सजा दी जायगी। उसे तुरन्त ही पकड़कर मेरे पास लाया जाय।"

"उसकी खोज के लिए सिपाही गए तो हैं, पर वह अपने ही गर्व से सरकार के पास न आ जायगा पारितोषिक की आशा में।'

अलातूनिया ने हाथ की मुट्ठियाँ बाँधकर कहा–"ओह, उसे अपनी सुंदरता का कितना अभिमान था और मुझे अपनी भुजाओं की शक्ति का ! बीच ही में यह किसने अपनी मनमानी कर दी ? मैं उसी शस्त्र से उसे दंढ दूँगा।"

इतने ही में अलातूनिया के कुछ सिपाही एक औरत के बाल खींचकर लाते हैं और उसे उसके सामने खड़ा करते हैं। औरत के सिर में कोई चादर नहीं थी। वह एक चोली पहने थी। कमर से एक बढ़िया लहँगा बँधा था उसके एक फेंटे में एक कटार खोंसी हुई थी। वह आँखें फाड़-फाड़कर तम्बू में इकट्ठे सभी लोगों को देखने लगी।

एक सिपाही उसका परिचय देते हुए बोला–"सरकार, आपके सिपाहियों में से किसी ने भी आपकी आज्ञा नहीं तोड़ी। यह डायन मालूम नहीं कहाँ से आ गई। इसी ने सुलताना रज़िया को मारा है।"

"हाँ, मैंने ही उसे मारा है।"

अलातूनिया ने अपनी तलवार उठाते हुए पूछा—"कौन है तू ?"

"अगर नहीं पहचान सकते तो बतलाऊँगी भी नहीं।"

"उसके साथ क्या शत्रुता थी तेरी ?"

"मेरा प्यार था, प्यार उसके साथ।" अहसास के साथ उसने कहा।

अलातूनिया ने सिपाहियों को आज्ञा दी—"उसे बाँधकर क़ैद कर लो। जब तक यह अपना पता नहीं देती, इसको कुछ भी खाने-पीने को न दिया जाय। इसे भटिंडा ले जाकर दुर्ग की सबसे ऊँची दीवार में फाँसी दी जायगी, हजारों आदमियों के बीच में।

"फिर क्यों न मार डालती मैं उसे ? एक हज़ार टुकड़ों में भी बाँट देती तो क्या मेरे हृदय का घाव भर जाता ?" फिर वह बहुत जोर-जोर से रोने लगी।

एक सरदार नें द्रवित हो पूछा—"क्यों, सुलताना ने तुम्हें ऐसी क्या चोट पहुँचाई ?"

"उसने मेरे बेटे को, हाय मेरे बीमार बेटे को बिना इलाज कारागार में सड़ा-सड़ाकर मार डाला। उसने मेरे बेटे का राजसिंहासन छीनकर उस पर स्वयं बैठ गई। क्या अब भी नहीं पहचान सके मुझे ?"

वहाँ उपस्थित सभी एक-दूसरे के कान में कहने लगे—"क्या यह शाह तुर्कान ही तो नहीं है ?"

"हाँ-हाँ, अब मुझसे क्यों डरते हो ! ज़ोर से क्यों नही कहते ? मैं ही वह शाह तुर्कान हूँ। कभी वह दिन भी था, जब मेरे आँखों के इशारों पर सुलतान इल्तुतमिश उठता और बैठता था, पर आज ?"

इसी समय एक घुड़सवार वहाँ आ पहुँचा। उसने राज्यपाल के सामने आदर-पूर्वक निवेदन किया—"सरकार, सुलताना रज़िया अपने खेमे में सुरक्षित हैं। मैं गुप्तरूप से यह पता लगाकर लाया हूँ उसके धोखे में उसका प्यारा अंगरक्षक हबशी याकूत मारा गया ?"

शाह तुर्कान रोती-चिल्लाती, सिर पीटकर बोली—"हैं ! वह रज़िज़ा

नहीं थी ? फिर कौन थी ? कहाँ है रजिया ? मैं देखूंगी, वह कैसे जीवित रहती है ?

सिपाहियों ने रज़िया को सुरक्षित सुनकर अलातूतिया के इशारे पर शाह तुर्कान को मुक्त कर दिया था। शाह तुर्कान कमर से कटार निकाल भाग जाती है।

अलातूनिया को फिर कुछ समझ आई। वह बोला—"पकड़ लो, इसे क़ैद कर लो, छोड़ क्यों दिया ?"

कई सिपाही उसके पीछे दौड़े उसे पकड़ने के लिए।

अलातूनिया ने उसी समय घुड़सवार गुप्तचर से कहा—"तुमने यह बड़ा सुसमाचार मुझे सुनाया है, पर तुम्हें इसके लिए पारितोषिक तभी मिलेगा जब तुम रज़िया बेगम को यहाँ ले आओगे। उन्हें तुरंत ही यहाँ ले आना, आवश्यक है। क्योंकि वह पगली, बेटे की मौत से भयानक प्रतिहिंसा में भर गई है। मैं नहीं जानता वह क्या करनेवाली है ?"

गुप्तचर तुरन्त ही घोड़े पर चढ़कर रज़िया सुलताना के लिए चला गया। पर उसके सफल होने से पहले ही चार सिपाहियों के घेरे में याकूत के वेश में रज़िया वहाँ लाई जाकर अलातूनिया के सामने खड़ी की जाती है। उसने सिर लटकाकर अपनी कमर में बँधी तलवार की मूँठ पर दोनों हाथ रख लिए।

"सुलताना, आपकी पराजय का उपहास करने के लिए तुम्हें यहाँ नहीं लाया गया है। आपके रक्त की प्यासी वह फिर रही है। उसकी प्रतिहिंसा से बचने के लिए तुम्हें यहाँ लाया गया है।" अलातूनिया ने फिर उन सिपाहियों से पूछा—"तुम कहां से इन्हें पकड़ लाए हो ?"

"ये अपने तंबू में युद्ध की थकान से अचेत पड़ी थीं।"

"वहाँ क्या इनकी सुरक्षा के लिए कुछ भी प्रबंध नहीं था ?"

"नहीं, कुछ भी नहीं था, क्योंकि यह बदले हुए वेश में थीं। इनके अंगरक्षक ने इनकी मृत्यु समझकर इनके सभी साथी भाग गए थे।"

"तुमने इन्हें कैसे पहचान लिया ?"

"तम्बू में इनकी पगड़ी के खुल जाने से इनके बाल बिखर गए थे, और इनका नारीत्व प्रकट हो गया था।"

अलातूनिया ने इसके बाद तम्बू के भीतर उपस्थित लोगों में से कुछ को फिर उस पगली को पकड़ लाने के लिए भेजा, और शेप को बाहर से उसके डेरे का पहरा देने को।

रज़िया बेग़म उस एकांत में उसी प्रकार खड़ी थी। अलातूनिया ने कहा—"सुलताना, अब तो युद्ध समाप्त हो गया। अब तुम्हारे ये दोनों हाथ तलवार की मूठ पर क्यों? अब तो तुम्हें लेखनी हाथ में लेकर संधि की शर्तें लिखनी हैं।"

रज़िया ने बड़ी क्रूर दृष्टि से उसे देखकर कहा—"मेरे सैनिकों को धोखा देकर बंदी कर लाए मुझे?"

"तुम्हारे साथियों को हमने धोखा नहीं दिया। वे ही तुम्हें धोखा देकर सोता हुआ छोड़, भाग गए।"

"क्या याकूत की स्वामिभक्ति भी दिखावे की थी?"

"तुम्हारा वेश पहने वह तुम्हारे धोखे में मार डाला गया।"

"उसे किसने मार डाला?"

"उसके भाग्य ने कहा जायगा या तुम्हारे उस रूप ने, जो तुमने उसे पहना दिया।"

रज़िया माथा पकड़कर बैठ गई थी। उसने अपने दोनों कानों में उँगलियाँ कोंच लीं, मानो वह यह सुनने के लिए तैयार ही नहीं थी कि याकूत मार डाला गया। वह फिर उठ गई।

अलातूनिया—"हमने नहीं मारा उसे। पर जिसने भी मारा उसे, ठीक ही किया। क्या वह हबशी तुम्हारे प्रेम के योग्य था?"

रज़िया—'चुप रहो, क्या प्रेम का कोई रूप या रंग होता है? क्या तुम्हारे विष-बुझे तीर ने उसके प्राण लिए?"

अलातूनिया—"नहीं। उसे शाह तुर्कान ने मार डाला।"

रज़िया—"वह मेरी बंदिनी थी।"

अलातूनिया—"किसी कौशल से निकल आई होगी। अपनी भूल मालूम हो जाने पर अब वह फिर तुम्हारी खोज में गई है। तुम चलो मेरे साथ। मैं तुम्हारी रक्षा के लिये सभी संभव प्रयत्न करूँगा।"

रज़िया—"तुम्हारे साथ चलूँ? तुम्हारे प्रेम द्वारा सुरक्षित होने के लिये?"

अलातूनिया—"घटनाओं के इन संयोगों को क्यों नहीं भगवान् की इच्छा समझती हो? इसलिये चलो मेरे महल में।"

रज़िया—"किसी तरह नहीं चलूँगी तुम्हारी प्रेयसी होने के लिये।"

अलातूनिया—"पर तुम मेरी बंदिनी अवश्य हो, चलना ही पड़ेगा।"

रज़िया दौड़कर भाग जाने की चेष्टा करने लगी। अलातूनिया ने झट से उसका हाथ पकड़ लिया—"भागकर जाओगी कहाँ? बाहर मेरे डेरे पर दोहरा-तिहरा पहरा तैनात है। अगर तुमने उनकी आँखों में भी धूल झोंक दी तो बाहर शाह तुर्कान तुम्हें ढूँढ़ रही है। उस पर यह सच्चाई खुल गई है कि उसने तुम्हारे धोके में याक़ूत को मार डाला।"

रज़िया अलातूनिया से अपना हाथ छुड़ा, आकाश को दोनों हाथ जोड़-कर बोली—"शाह तुर्कान!"

"हाँ शाह तुर्कान! तुम यहाँ से गईं नहीं कि वह तुम्हें ढूँढ़ लेगी। उसके हाथ में मौत की जीभ-सी चमकती हुई, काले याक़ूत के लाल लहू में रँगी हुई कटार, उसके हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वलंत ज्वाला और आँखों में उड़ती हुई चिनगारियाँ हैं। मैंने तुम्हें सावधान कर दिया, शेष तुम समझ लो।"

रज़िया कटे हुए वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पड़ती है। अलातूनिया उसे सँभालता है।

रज़िया कहने लगी—"मैं तुम्हारी प्रेयसी नहीं बंदिनी हूँ। चाहे जैसे मुझे बाँधकर बंद कर रख दो।"

२३

युद्ध में विजयी होकर अलातूनिया भटिंडा के दुर्ग में लौट आया। वह आगे दिल्ली की ओर नहीं बढ़ा। लोगों ने समझ लिया रज़िया ही उसका लक्ष्य थी, दिल्ली का राजसिंहासन नहीं। पर रज़िया ने उसको किसी मूल्य पर स्वीकार नहीं किया।

उसने याकूत के वियोग में शोक-सूचक काले परिच्छद पहन लिए। याकूत ने उसके लिए अपने प्राण विसर्जित कर दिए। उसके हृदय में याकूत के लिये जो अपनापन था, उसके प्राणों की बलि से वह चरम प्रेम में विकसित हो गया। दिन-रात शोक-सागर में डूबते-उतराते उसका समय बीतने लगा।

किसी हथकड़ी-बेड़ी, अन्धकार या शून्यता में अलातूनिया ने उसे नहीं बाँध रक्खा था, फिर भी वह उसकी बंदिनी थी। उसने रज़िया को सुख और विलास के जो विविध उपकरण दे रक्खे थे,उन सबकी ओर से वह उदासीन थी। दो-तीन दासियाँ उसकी सेवा के लिये नियुक्त थीं, भोजन और विश्राम के लिए राजसी प्रबंध था। रज़िया को कुछ भी ग्राह्य नहीं था। प्राण धारणमात्र के लिये वह साधारण और स्वल्प भोजन पाती, भूमि पर सोती और बहुत कम ही बोलती।

नियत समय पर नहा-धोकर नमाज़ पढ़ती, धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करती। माला कभी हाथ से छूटती ही न थी।

भटिंडा के दुर्ग में महिलाओं के उपवन-फुलवारियों, सरोवर-उद्यानों के मार्ग भी उसके लिये उन्मुक्त थे। दो दासियाँ हर समय छाया की तरह उसके साथ-साथ लगी रहती थीं, पर वह अपने कक्ष को छोड़कर कहीं भी न जाती।

दिन सप्ताहों में और सप्ताह महीनों बीतते गए। इस प्रकार एक वर्ष समाप्ति पर आ गया, पर रज़िया के मनोभावों में कुछ भी परिवर्तन नहीं दिखाई दिया।

फिर अलातूनिया ने रज़िया की दासी से पूछा—"क्यों, क्या कहती हैं सुलताना ?"

दासी ने चुप रहकर लज्जा से मस्तक झुका लिया ।

"तुम्हारी सारी चतुराई विफल हो गई । याद करो, तुमने क्या कहा था ? मैं तुम्हारे उन शब्दों को फिर से कहूँ ?"

दासी चुप रहकर अपने एक हाथ की उँगलियों से दूसरे हाथ पर चिकोटी काटने लगी ।

"तुमने यही तो कहा था न, सुलताना कुछ ही दिनों में मेरे विचारों के अनुकूल हो जायँगी । आज एक वर्ष बीत गया !"

"इत्र की शीशियाँ खोलकर, गुलाब-जल छिड़ककर या सुगंधित धूप जलाकर जब मैं उनके वैराग्य को तोड़ देने की चेष्टा करती हूँ तो वह अपने स्वप्नोंमें से भी बाहर आकर मुझे कोसने लगती हैं। कमरे में कहीं पर जब कोई रंगीन चादर या गलीचा बिछाती हूँ या परदे टाँगती हूँ तो उसको भी सहन नहीं कर सकतीं, पर मैं निराश नहीं हूँ ।"

"पर कब तक ?"

"इस नवीन आयु और वैराग्य को साथ-साथ नहीं चलना चाहिए । मैं इनको लौटा लाऊँगी फिर राग के संसार में । मैंने इनकी उँगली पकड़ ली है । मैं खींच लाऊँगी इनका हाथ, जहाँ मैं चाहूँगी ।"

उत्साहित होकर अलातूनिया ने कहा—"कैसे ?"

"मैं जब भी रबाब हाथ में लेकर बजाने लगती, कुछ देर सुनने के बाद यह उसे रोक देने का आग्रह करतीं । मैं इनकी बात मान लेती । मैंने इस बात को जारी रक्खा और राग में इनकी रुचि बढ़ाती गई ।"

"प्रेम की लता को हरित-भरित रखने के लिये रागिनी बरसात का काम देती है, ऐसा कहा जाता है ।"

"हाँ, मैं उसी की सहायता से अपने लक्ष्य को पा लूँगी । मैंने एकांत में कभी-कभी इन्हें गुनगुनाते सुना, पर निकट जाने पर यह चुप हो जातीं । फिर

भी मैंने कुछ समय बाद इनके मन की रागिनी को पकड़ लिया, तभी से इनकी मानसिकता पर मेरा अधिकार हो गया।''

मैं नहीं समझा, तुम्हारा अधिकार कैसा ?''

''एक दिन जब ये गुनगुना रही थीं, मैंने रबाब में इनके गीत को मुखरित कर दिया। मैं इनके कमरे के बाहर थी। इन्होंने मुझे भीतर बुलाकर रबाब सुनने का आग्रह किया। तब से ये अक्सर मेरा रबाब सुनने लगी हैं। क्या यह इनके मन पर मेरा अधिकार नहीं है ?''

इसी समय एक दासी ने प्रवेश कर कहा—''सरकार, राज-सभा में आपके आगमन की प्रतीक्षा है। किसी अत्यन्त आवश्यक काम के लिये मंत्री ने आपको याद किया है।''

राजसभा में अलातूनिया को उसी समय जाना पड़ा। मंत्री ने एक राजाज्ञा उनकी ओर बढ़ाते हुए निवेदन किया—''दिल्ली से यह राजाज्ञा आपके नाम आई है।''

अलातूनिया बोला—''मै बड़ी आसानी से दिल्ली की तरफ बढ़ सकता था, वहाँ के विद्रोहियों से मिलकर राजसिंहासन पर भी अधिकार कर सकता था। पर मैंने अपना लालच नहीं बढ़ाया, फिर उनकी बेचैनी का क्या कारण है ?''

मंत्री बोला—''सरकार, इसे पढ़ने की आज्ञा दी जाय।''

अलातूनिया ने मानो उस फ़रमान का मतलब मन-ही-मन समझ लिया था। वह बोला—''मैंने रज़िया सुलताना को रण के मैदान में जीता है। मैं दिल्ली से उसको डाका डालकर नहीं लाया हूँ। सुलताना का पुरुष-वेश उन्हें दिल्ली के सिंहासन पर असह्य है। वहाँ उनकी अनुपस्थिति से उन्हें प्रसन्नता ही होनी चाहिए। पढ़ो, क्या लेख है।''

मंत्री ने पढ़ना आरंभ किया—''सूबेदार अलातूनिया को दिल्ली के सुलतान की चेतावनी है...''

अलातूनिया—''लो, दिल्ली में कोई नया सुलतान पैदा भी हो गया !

यह उन्हीं चालीस सरदारों की करामात है। उन्होंने फिर कोई-न-कोई पुतला
ढूँढ़कर उसके सिर पर दिल्ली का राजमुकुट बाँध दिया है। हाँ, आगे....''

मंत्री ने फिर आरंभ किया—'भटिंडा के दुर्ग में रज़िया बेगम को
बन्दिनी बनाकर क्यों रक्खा गया है? सूबेदार के इस निश्चय को हमारे
चालीसों सरदार नहीं मानते। इसके सिवा सुना गया है, शाह तुर्कान को वहाँ
क़ैद में रखा गया है। सूबेदार को इसका भी कोई अधिकार नहीं है।''

कुछ सभासद एक-दूसरे की ओर देखकर बोले—''शाह तुर्कान हमारे
यहाँ वंदिनी हैं, यह बे-सिर-पैर की झूठ दिल्ली में किसने फैला दी? क्यों
हमारे साथ विग्रह के लिये वे चालीसों सरदार कोई बहाना ढूंढ़ रहे हैं?''

एक सरदार ने कहा—''बहुत से लोगों ने यहाँ एक पगली को वित्रसना,
बाल खोले वनों, नालों और क़ब्रिस्तानों में फिरती हुई देखा है। भगवान् जानता
है, वह शाह तुर्कान ही है या कोई और?''

मंत्री ने फ़रमान का अंतिम भाग पढ़ा—''यदि वे दोनों क़ैदी हैं तो
दिल्ली के राजसिंहासन के हैं। भटिंडा के सूबेदार को उन्हें रोक लेने का कोई
अधिकार नहीं है। सूबेदार अलातूनिया को माफ़ी के साथ फ़ौरन् ही उन्हें दिल्ली
के सुलतान को सौंप देना चाहिए कि अकारण ही निर्दोष प्रजा को रक्तपात से
बचाया जाय। सात दिन का अवकाश दिया जाता है। यदि यह राजाज्ञा नहीं
मानी गई तो दिल्ली से बहुत बड़ी फ़ौज भटिंडा पर चढ़ाई कर देगी।''

अलातूनिया—''फ़रमान किसके नाम से जारी किया गया है?''

मंत्री—''बच्चों की-सी लिखावट है। पढ़ता हूँ—सुलतान ब-ह-रा-म।''

अलातूनिया—''बहराम? कौन है यह?''

एक सरदार—''सुलतान इल्तुतमिश का कोई और छोटा-सा लड़का ढूंढ़
कर बना दिया गया होगा सुलतान।''

अलातूनिया—''फिर उन्हें रज़िया बेगम की क्या ज़रूरत हो गई?''

वही सरदार-''किवदंती प्रसिद्ध है कि सुलतान इल्तुतमिश का एक गड़ा
हुआ कोष है। उसका भेद वह केवल रज़िया बेगम को ही दे गए हैं, इसीलिए
र ज़िया बेगम को डरा-धमकाकर वे उस ख़ज़ाने का भेद लेना चाहते हैं।''

अलातूनिया के मुख से निकल पड़ा—"मैं सुलतान के उस गड़े हुए खज़ाने को खोद लेना नहीं चाहता, पर अवश्य ही रज़िया बेगम के रूप के गर्व को तोड़ने की इच्छा रखता हूँ।"

मंत्री ने पूछा—"पर इस राजाज्ञा का क्या उत्तर दिया जाय ?"

अलातूनिया ने क्रुद्ध होकर कहा--"उठाकर चूल्हे में झोंक दो इस फ़रमान को इसे लानेवाले उस साँडनी-सवार के सामने ही।"

एक समझदार सरदार बोला—"शासक को अपना क्रोध छिपाकर ही रखना उचित है।"

साँडनी-सवार को यों ही एक गोल-मोल उत्तर देकर टाल दिया गया। "रज़िया बेगम का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उसका इलाज हो रहा है। ठीक हो जाने पर उन्हें आदर-सत्कार के साथ दिल्ली भेज दिया जायगा। शाह तुर्कान सुना है, भटिंडा के जंगलों में छिपी हैं। उनकी खोज की जा रही है। मिल जाने पर उन्हें भी भेज दिया जायगा।"

२४

उस रात को बड़ी देर तक वह दासी रज़िया बेगम को रबाब सुनाती रही। जब बेगम को नींद आ गई तो उसने रबाब को उसके खोल के भीतर बंद कर दिया और स्वयं भी सो जाने का उपक्रम करने लगी। उसने भूमि पर अपनी शय्या बिछाई और फिर सोने से पूर्व शृंखल को द्वार पर ठीक-ठीक लगा हुआ देख लिया।

दासी सोना ही चाहती थी कि अचानक बाहर से किसी ने द्वार पर थपकी दी। रज़िया चौंककर उठी और शय्या छोड़कर चिल्लाने लगी—"शाह तुर्कान ! तुर्कान ! दरवाजा मत खोलो।"

दासी ने साँकल पर से हाथ हटा लिया—"नहीं बेगम, आप स्वप्न के विभ्रम को सच्चा समझ रही हैं।"

"यहीं है वह यहीं है ! सभी ऐसा कहते हैं । मेरे मन में भी यही सत्य जागता है । वह मेरे रक्त की प्यासी ! पिएगी, पिएगी ! वह अवश्य पिएगी !" रज़िया असहाय होकर दासी के पैरों पर गिर पड़ी । उसका मुख रक्ताभ हो गया, उसकी चादर कंधों पर से हट गई, जूड़ा खुलकर पीठ पर बिखर गया ।

बाहर खड़ा वह सूबेदार अलातूनिया था । अपने मन के आग्रह को दबा, दरवाज़े पर कान देकर उनकी बातें सुनने लगा ।

"सुलताना ! सुलताना ! मैं आपकी तुच्छ दासी ! यह क्या करने लगीं आप ?" दासी ने हाथ पकड़कर उसे उठा लिया ।

रज़िया ने उसे आलिंगन में भर लिया—"मुझे हर समय उसकी भयानक सूरत, मेरा पीछा करती हुई जान पड़ती है ।"

"आप ज़रा भी घबराएँ नहीं । सूबेदार साहब ने जंगलों और गुफाओं में ढूंढ़ने के लिये सिपाही भेज रक्खे हैं । उसे जीता या मरा हुआ पकड़ लाने के लिये भारी इनाम की घोषणा की है ।"

"फिर बाहर से दरवाज़ा किसने खटखटाया ?"

दासी को यह ज्ञात हो गया था । पर उसने छिपाकर कहा—"कोई भी हो, वह पगली नहीं हो सकती । बाहर क़िले के लोहे के द्वार पर पक्का पहरा । फिर महल के फाटक पर दोहरे सिपाही, फिर भीतर से । फिर तुम्हारे इस कमरे के बाहर दासियाँ, भीतर मैं । कौन आ सकता है ? किसकी हिम्मत है ?"

फिर बाहर किसी ने द्वार खटखटाया । रज़िया फिर चौंककर बोली—"यह सुनो न ?"

बाहर से सूबेदार की आवाज आई—"द्वार खोलो न । क्या सुलताना सो गईं, इतनी जल्दी ?"

दासी ने द्वार खोल दिए । हँसते हुए अलातूनिया ने प्रवेश किया—"अच्छा, अभी तो तर्क-वितर्क चल रहा है । मैं समझा था सुलताना आराम कर रही हैं ।"

रज़िया ने भूमि पर से अपनी चादर उठाकर उससे अपना सिर ढक

लिया और वह कोने में खड़ी हो गई। उसने सूबेदार की ओर से अपना मुँह फिरा लिया। वह चादर के सिरे को अपने हाथों में लेकर उसमें गाँठ दे-देकर उसे खोलने लगी।

दासी ने बड़ी विनम्रता से पूछा—"सरकार ने असमय कैसे कष्ट किया ?"

"कठिन आवश्यकता पड़ जाने पर फिर समय-असमय का ध्यान ही छूट जाता है। सुलताना, आप आराम से बैठ जाइए न। कब तक खड़ी रहेंगी ? संभव है, मुझे अपनी आवश्यक बात पूरी कर लेने में कुछ देर लग ही जायगी।"

दासी ने बड़ी विनम्रता से रज़िया को एक चौकी पर बिठा देना-चाहा, पर उसने दासी की उँगलियाँ भींच दीं और सिर हिलाकर 'नहीं' प्रकट किया।

दासी कहने लगी—"इनके मन में बड़ा भय समा गया है।"

"यह भय तो केवल इनकी कल्पना में है। और सच्चा भय प्रत्यक्ष में आया है इनके लिये।"

रज़िया ने बड़ी तेजस्विता के साथ मुँह सामने किया—"मेरे लिये और कौन-सा भय ?"

"हाँ, उसी के लिये तो इस असमय में आया हूँ मैं। दिल्ली से एक शाही फ़रमान आया है। उसमें लिखा है, रज़िया बेगम को क़ैदी के ही रूप में दिल्ली के सुलतान को तुरंत सौंप दिया जाय।"

यह सुनते ही रज़िया कुछ और निकट हो गई सूबेदार के। तर्जनी उठा कर कहने लगी—"दिल्ली में वह कौन सुलतान है ? किसका ऐसा साहस है कि वह मुझे क़ैदी की दशा में माँगता है ?"

अलातूनिया ने कहा—"मैंने अपने सिपाही चारों ओर दौड़ाए हैं। शाह तुर्कान को तो वे पकड़कर ले आवेंगे। मैं जल्दी-से-जल्दी उसे अपने कारागार में बंद कर दूँगा, पर इनका क्या करूँ ?"

दासी ने पूछा—"दिल्ली के शाही फ़रमान का क्या उत्तर लिखा आपने ?"

"उनको जवाब क़लम से नहीं, तलवार से दिया जायगा।"

अलातूनिया के मुख से इन शब्दों को सुनते ही रज़िया के मुख पर बड़ी प्रसन्नता की लहर दौड़ गई । सूबेदार उसकी इस भावना को देखकर बोला– "ठीक है ।"

"हाँ, ठीक तो है ।"

"पर यदि दिल्ली से भटिंडा पर चढ़ाई कर दी गई तो !"

रज़िया ने जो इतने दिनों से शोक-सूचक काली चादर ओढ़ रक्खी थी, उसे भूमि पर फेंककर दासी से कहा—"जाओ, उन कपड़ों को ले आओ, जो सूबेदार ने ईद के अवसर पर मेरे लिये बनाए थे ।"

दासी उस काली चादर को उठाकर चली गई । अलातूनिया ने दरवाज़ा बंद कर दिया—"सुलताना, यदि तुम्हारी समवेदना और सहचारिता मुझे मिल जाय तो फिर मैं चालीस क्या चार सौ सरदारों से भी लड़ाई के मैदान में मोरचा ले सकता हूँ ।"

"लेकिन !" रज़िया ने हाथ की दोनों मुट्ठियाँ बाँधकर अपने होठों से मिलाईं फिर गहरे सोच-विचार में पड़ गई । फिर वह अलातूनिया के चरणों के पास बैठ गई । उसने दोनों हाथ उसके पैर पर रख दिए और बड़ी करुणा-भरी दृष्टि से उसे देखने लगी । आँखों से मोती की तरह दो आँसू निकल पड़े, पर अधरों से एक भी शब्द नहीं ।

अलातूनिया ने दोनों हाथ पकड़ उसे ऊपर उठा लिया । उसका विनीत मस्तक अपनी छाती से लगा लिया और अपने दोनों हाथ उसकी पीठ पर !

बड़ी कठिनता से उसके मुँह से शब्द निकले—"अन्ततः क्या इसी विवशता के लिये मैं जीवित रह गई !"

"क्या प्रेम कोई विवशता है ! वह एक महाशक्ति है। क्यों नहीं हम उस शक्ति से दिल्ली की सल्तनत को विनष्ट हो जाने से बचा लेंगे और सुलतान इल्तुतमिश के सभी अधूरे स्वप्नों को पूरा कर देंगे ।"

"पर मैंने उनके सामने, भगवान् के पवित्र नाम पर दिल्ली के राज-

सिंहासन पर बैठने के लिये आजन्म कुमारी रहने का व्रत लिया था।" रज़िया ने सूबेदार के बंधन से अपने को मुक्त किया और फिर अपनी पुरानी जगह पर पीठ फिरा खड़ी हो गई।

"नहीं बेगम।" अलातूनिया ने फिर रज़िया का हाथ खींचते हुए कहा--"दिल्ली का वह सिंहासन तुम्हारे हाथ से चला गया, जब तुमने तबरहिंद की रण-भूमि में पराजय पाई, तभी तुम्हारी वह प्रतिज्ञा भी समाप्त हो गई। अब मैंने तुम्हें अपने हृदय की बंदिनी बनाया है। अब तुम्हें दिल्ली के सिंहासन पर मैं बिठाऊँगा और उसकी शर्त है, तुम्हें विवाह करना होगा, मेरे साथ, अलातूनिया के साथ।"

अलातूनिया ने रज़िया को अपनी बाहों में खींच लिया। उसके आलिंगन में रज़िया ने अपना मस्तक तिरछा कर दिया। उसके कपोलों पर लालिमा दौड़ गई। एकाएक उसने अपने को सूबेदार के बन्धन से छुड़ा लिया और दौड़ कर द्वार खोल दिए। बाहर उसके वस्त्रों के संदूक को भूमि पर रक्खे दासी खड़ी थी।

रज़िया ने क्षोभ और संकोच में विनीत होकर पूछा—"कब से खड़ी थीं?"

"अभी तो आई हूँ।"

दासी संदूक को भीतर ले आई। उसको खोलते ही भीनी सुगधि से सारा कक्ष सुवासित हो गया। दासी एक-एक वस्त्राभूषण निकाल-निकालकर बाहर रख देखने लगी कि किस पर रज़िया आकृष्ट होती है।

कुछ वस्त्र और अलंकारों को छाँटकर उसने एक ओर रक्खा, फिर उन्हें संदूक़ में डाल दिया।

दासी ने अचकचाकर पूछा—"क्यों, अब क्या बात हो गई?"

"अभी समय नहीं आया इनको पहनने का।"

"कब आवेगा?" अलातूनिया ने पूछा।

"कौन बता सकता है!" उसने उदास होकर अलातूनिया के कंधे पर दोनों हाथ बाँधकर पहना दिए।

"क्यों रज़िया, फिर यह उदासी कैसी ?"

"दिल्ली के राजसिंहासन और हमारे बीच में अभी एक युद्ध-क्षेत्र है, वहाँ लोहे के वस्त्रों की आवश्यकता है, इनका क्या काम ?"

"युद्ध को आने दो, पर जब तक वह नहीं आता, तब तक क्यों नहीं हम नाच और गीत से, रस-रंग से, हँसी और खुशी से अपने अँधेरे घंटों में उजाला कर लें।"

"नहीं सूबेदार, युद्ध की प्रतीक्षा ठीक नहीं। तुम सोचते हो दिल्ली की सेना भटिंडा पर चढ़ाई कर तुमसे मुझे छीन ले जाय।"

अलातूनिया को रज़िया के इन शब्दों में अपार स्फूर्ति और उत्साह मिल गया। "फिर तुम क्या चाहती हो ?"

"युद्ध को हम जितना टालते जावेंगे, पराजय उतनी हमारी ओर बढ़ती जायगी। लड़ाई में जो पहली चोट कर सकता है, बहुधा विजय उसी के पक्ष में होती है।"

"ठीक है, मैं मानता हूँ तुम्हारी बात।"

"तो क्यों न कल ही को युद्ध के बाजे बजाकर कूच करें।"

"कल ही को ?"

"हाँ, मैंने जब भटिंडा पर चढ़ाई करने की ठानी थी तो कुछ भी देर नहीं लगाई।"

अलातूनिया के मुख पर एक मुसकान प्रकट हुई !

"तुम क्या यह सोचने लगे, उस शीघ्रता के कारण ही मुझे पराजय मिली।"

"नहीं, तुमने हारकर भी अलातूनिया पर विजय पाई।" अलातूनिया ने चुपचाप दासी को कुछ संकेत दिया।

दासी ने संदूक़ में से नीली ज़री का काम किया हुआ लँहगा निकाला। उसे रज़िया की तरफ बढ़ाती हुई बोली—"सुलताना, इसके साथ के लिए यह लाल सलमे-सितारों की रेशमी चादर बहुत सुंदर जंचेगी।"

हँसकर रज़िया ने कहा—"मुझे तेरी यह पसंद बहुत रुचिकर है।"

"तो इसे पहनकर देखिए भी तो ?"

"हाँ,इसी को पहनूँगी। दिल्ली के राजसिंहासन पर जब मैं बैठूँगी,तब। क्योंकि अब मैं अपने स्वामी के साथ उस सिंहासन पर बैठूँगी और तब कोई भी मेरे विरुद्ध बोल नहीं सकेगा कि औरत का राज्य हो गया।"

दासी का मुख फीका पड़ गया। "फिर आप आज क्या पहनेंगी ?"

"अपना वही मर्दाना लिबास, वही कवच, वही शस्त्र, जिन्हें पहनकर मैं सूबेदार का सामना करने आई थी।"

दासी बोली—"सुलताना, मुझे तो उन कपड़ों का कुछ भी पता नहीं। मैं नहीं जानती, वे कहाँ रक्खे गए।"

"इन्हें ज्ञात होगा।" रज़िया ने अलातूनिया की ओर संकेत किया।

"मैं कुछ नहीं जानता। इतने दिनों बाद वे कहाँ गए, कौन बता सकता है ?"

"फिर क्या होगा ?"

"कपड़े नये बन जावेंगे।"

"नहीं सूबेदार, तुम्हारे कपड़े पहनकर जाऊँगी !"

"तुम्हारी यह बात मैंने मान ली,एक बात तुम्हें भी मेरी माननी पड़ेगी।"

"कौन-सी ?"

"दिल्ली पर चढ़ाई करने से पहले हमारा विवाह हो जाना चाहिए। तभी हम एक मन और एक प्राण होकर लड़ सकेंगे।"

"ठीक है।"

"इसलिये सुलताना, कल को लड़ाई के बाजे बजने से पहले आज हमारे विवाह के बाजे बजने उचित हैं।"

दासी ताली बजाकर नाचने लगी आत्मविस्मृत होकर। उसने रज़िया को दुलहन सजाया। सुंदर कपड़े और बहुमूल्य आभूषण। सुगंधित पदार्थों से सुवासित कर उसकी चोटी नई तरह से बाँधी। उसके पैरों में महावर लगाकर

उसके हाथों में मेंहदी रचाई। फिर वह अपनी कई सखियों परिचारिकाओं को बुला लाई और उन्होंने रात भर उन दोनों के कक्ष के बाहर नृत्य-गीत का आयोजन किया !

२५

रात ही में उन दोनों का विवाह संपन्न हो गया। ग़रीब लोगों को दान बाँटा गया, इष्ट-मित्रों को फल-फूल, मेवा-मिष्ठान्न। नौकर-चाकरों को दिल खोलकर रुपया-पैसा मिला। दूसरे दिन ख़ूब आमोद-प्रमोद, खाने-पीने का प्रबन्ध किया गया। सारे नगर ने आनन्द-उत्सव मनाया।

दूसरे दिन संध्या-समय तक दिल्ली पर चढ़ाई करने की घोषणा की गई।

कुछ समझकर मंत्रियों ने यह राय दी थी कि अकारण ही दिल्ली पर आक्रमण करना बुद्धिमानी न होगी। उनको कायर और उत्साह-हीन होने का लाँछन दे दिया गया। कुछ अधिकारियों ने आक्रमण का तो विरोध नहीं किया, पर धैर्य-पूर्वक पूरी-पूरी तैयारियाँ कर आगे बढ़ने की राय दी। उन्हें भी रूढ़ि-वादी क़हकर टाल दिया गया।

रज़िया ने विवाह के वस्त्र उतारकर रण-सज्जा की। मर्दाने कपड़े पहने। आभूषण उतारकर शस्त्रों से अपने शरीर की शोभा बढ़ाई। रण के बाजे बज उठे।

दोनों अलग-अलग हाथियों पर सवार हुए। सेना के अगले भाग में सेनापति चला। उसके बाद अपने अंगरक्षकों के साथ अलातूनिया। रज़िया का हाथी बीच में रक्खा गया। रज़िया को बार-बार यही चेष्टा रही कि वह आगे जावे, पर अलातूनिया ने अपने सेनापतियों को यह चेतावनी दे रक्खी थी कि उसकी अच्छी तरह रक्षा की जाय।

अलातूनिया के मन में दिल्ली की सेना का इतना भय नहीं था, जितना उस अकेली शाह तुर्कान का। उसे सूचना दी गई थी कि शाह तुर्कान भटिंडा के जंगलों और क़ब्रिस्तानों में घूमती फिर रही है। किसी-किसी को यह भी विश्वास था कि वह मरकर चुड़ैल के वेश में रज़िया से अपनी प्रतिहिंसा का अवसर ढूँढ़ रही है।

बड़ी धीरता पूर्वक-निर्भय गति से अलातूनिया की सेना दिल्ली की ओर बढ़ रही थी। यह सर्वथा ही असम्भव था कि दिल्ली के प्रशासकों को इस अभियान की कुछ भी खोज-ख़बर न होती। गुप्तचरों ने उन चालीसों सरदारों पर यह भेद खोलने में कुछ भी देर नहीं की।

तुरंत ही दिल्ली की सेना संगठित होकर शत्रु का सामना करने को दौड़ पड़ी। उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि दिल्ली पहुँचने से बहुत पहले ही अलातूनिया का अभिमान मार्ग में ही तोड़ दिया जायगा। ऐसा ही हुआ। अलातूनिया दिल्ली के दुर्ग में प्रविष्ट होने का स्वप्न देख रहा था कि अचानक दिल्ली की सेना ने दोनों तरफ से आकर उन्हें घेर लिया।

कैथल की रण-भूमि में शत्रु की सेना अलातूनिया के ऊपर अचानक ही टूट पड़ी! उसकी समझ में ही यह बात नहीं आई कि वे लोग कहाँ से आकर टिड्डी-दल की तरह उन पर बरस गए।

इस सहसा आक्रमण से अलातूनिया का हाथी बिदक गया और महावत के अंकुश से बिछुड़कर जंगल की ओर भाग गया। वह बुरी तरह से तीरों से घायल हो गया था और मर्मान्तक पीड़ा पाकर मर गया।

सूबेदार के हाथी के भाग जाने से सारी सेना में भगदड़ मच गई। अलातूनिया के सभी सेनापति दिल्ली की सेना का सामना करने में हतोत्साह हो गए।

अलातूनिया रज़िया की रक्षा के लिए उसके हाथी की ओर दौड़ा। उसका हाथी भी लड़ाई के मैदान से भाग रहा था। हाथी पर रज़िया शत्रु की दृष्टि में आसानी से पड़ जायगी। इस भय से सूबेदार ने उसे भी हाथी पर से उतार लिया और दोनों जंगल की ओर भागने लगे।

रज़िया का हाथ पकड़कर वह भाग चला। कहाँ जा रहा है, किधर जा रहा है, इसकी कोई चिंता नहीं थी उसे।

हठात् कल्पना के नेत्रों से अलातूनिया ने देखा। कन्धे पर सूखे बाल छितराए, धंसे हुए गाल, गड्ढों में पड़ी आँखों से आग बरसाती हुई बिजली के वेग से वह आ रही थी ! अलातूनिया काँप उठा !

उसने अब देखा, रज़िया थक गई थी। एक पेड़ की छाया के नीचे बैठती हुई उसने पूछा—"अलातूनिया ! अभी और कब तक चलते रहें ?"

"जब तक चल सकें। सेना के भय से तो दूर निकल आए हैं पर "

अलातूनिया कहते-कहते जिस भय को स्पष्ट नहीं कर सका था, रज़िया उसे समझ गई और उठकर जाने लगी—"पर जावें किस तरफ ?"

"जिधर भी पैर बढ़ जायँ। जो होनहार है, वह तो होकर ही रहेगा। फिर हमें अपनी बुद्धि का क्या अभिमान ?"

रज़िया उस पथ-विहीन विजन में किसी ओर जाने लगी,अलातूनिया ने उसका अनुसरण किया। सहसा दूरी पर किसी की छाया उसने उन्हीं की ओर बढ़ती हुई देखी। वह सहम कर रह गया। उसके मुख से भय-सूचक एक कराह भी निकल पड़ी।

रज़िया ने पीछे फिरकर उसकी कमर पकड़ ली—"कौन है ?"

अलातूनिया अपने मन में शाह तुर्कान के जिस चित्र को बनाता हुआ चला आ रहा था, उसको उस छाया में उसी का प्रतिबिब मिला। अब वह छाया ओझल हो गई थी। सूबेदार बोला—"नहीं रज़िया, कुछ नहीं।"

रज़िया कहने लगी—"क्यों हमारे मन में दिल्ली पर चढ़ाई करने की सूझ गई ? आकांक्षा बढ़ाकर क्यों हमने अपने लिये इतना बड़ा संकट मोल ले लिया। क्यों नहीं हम किसी किसान के यहाँ जाकर उसकी भूमि पर श्रम कर अपना पेट भरने लगे !"

"रज़िया, इस प्रकार दिल तोड़ने की बात नहीं। हमारे हाथों से हजारों-लाखों लोगों की भलाई होगी, इसीलिये हम राजसिंहासन की ओर

धावमान हैं। जीवन में ऊँच-नीच लगी हुई ही है। रात आवेगी ही, विना उसके आए प्रभात हो ही नहीं सकता।"

अचानक रज़िया ने भी दूरी पर, झाड़ियों की छाया में कुछ देखा। वह घबरा उठी और उसने अलातूनिया का हाथ पकड़कर उस तरफ उँगली से दिखाया—"देखो-देखो, वह क्या है? भय से उसका मुख सूख गया था और कंठ अवरुद्ध!

अलातूनिया बोला—"नहीं तो, कुछ भी नहीं। सिर्फ तुम्हारी ही कल्पना का कोई निर्माण! चलो, निकट जाकर उस भ्रम को मिटा लें।"

"नहीं, अब उधर नहीं जावेंगे। इधर चलो।" रज़िया ने दूसरी ओर चलने का संकेत दिया।

वे दोनों उधर ही चलने लगे।

कुछ दूर चलने पर रज़िया बोली—"पानी नहीं मिलेगा कहीं? प्यास! प्यास लग गई।"

"देखा हुआ कहीं कुछ है नहीं। तुम्हें छोड़कर जाऊँ किधर? इस निर्जन वन में कहीं गाँव के चिह्न नहीं मिल रहे हैं, न किसी मानव की छाया!"

फिर वे दोनों चलने लगे। प्यास की तेजी ने, उनको आगे बढ़ने की स्फूर्ति दे दी थी। आशा-ही-आशा में वे चलते गए, लेकिन पानी की कहीं कोई बूंद भी नहीं दिखाई दी।

जिस मार्ग से होकर रज़िया और अलातूनिया गए थे, उसी से कुछ दूरी पर उन्हीं की फ़ौज के दो सिपाही भी लड़ाई के मैदान से भागकर चले आ रहे थे।

पहला सिपाही जब एक पेड़ के नीचे से अपनी थकान मिटाकर जा ही रहा था कि दूसरे ने पीछे से पुकारा—"क्यों रे भगोड़े! लड़ाई के मैदान में पराजय होने से पहले ही भाग आया?"

"हाँ रे वीर, तू अपनी क्यों नहीं कहता ? तू भी तो साथ-ही-साथ आ रहा है।"

"बड़ी ही अजीब लड़ाई हुई यह। आरंभ होने भी नहीं पाई थी कि समाप्त ! सूबेदार अलातूनिया को दिल्ली का राजसिंहासन प्राप्त कर लेने की पूरी आशा थी।"

"सुनने में आया है, दिल्ली की सेना के साथ एक चुड़ैल भी लड़ रही थी, उसी के कारण भटिंडा के सूबेदार को यह भयानक पराजय मिली।"

"चुड़ैल को मनुष्यों के युद्ध से क्या मतलब ?"

"असाधारण शक्ति-संपन्न होने के कारण ही उसे चुड़ैल का नाम दिया गया। उसके मस्तिष्क की विकृति ने ही उसे मरने-मारने की निर्भयता दे दी। उसके भयानक रूप को देखकर सूबेदार के तो होश उड़ गये और वह युद्धक्षेत्र को छोड़कर भाग खड़े हुए।"

"वह तो नहीं भागे, उनका हाथी भगा ले गया उन्हें।"

अचानक उन्होंने पीछे से किसी को पुकारते हुए सुना। उसे देखते ही उनके होश उड़ गए ! वे भागने लगे।

उसकी पुकार थी—"ठहरो-ठहरो, भागो मत। मुझे काम है तुमसे। मैं तुम्हारी शत्रु नही हूँ।"

पहला उसकी बात सुनने को रुकने लगा था। पर दूसरा उसका हाथ खींचकर बोला—"भाग चल। यह तो वही औरत जान पड़ती है। यहाँ क्यों आ गई ?"

दोनों फिर भागने लगे। पहला ठोकर खाकर गिर पड़ा। दूसरा उसे सँभालने लगा। इस अवकाश में वह उनके निकट आ गई। दोनों हाथ जोड़ कर बोली—"मेरे ऊपर कृपा करो।"

उसकी दयनीय मुखाकृति और विच्छिन्न वेश को देखकर उन्हें दया आ गई। छाती पर कोई चादर या मैली चोली भी नहीं थी उसके। लहँगा भी कई जगहों से जीर्ण-शीर्ण। कमर में एक पटुका बँधा था। उसके एक तरफ

एक थैली लटक रही थी। दूसरी ओर किसी शस्त्र का संदेह हुआ उन्हें।

उसके जुड़े हुए हाथों को देखकर उन दोनों सिपाहियों का भय जाता रहा। एक ने साहस कर पूछा—"कौन हैं आप ?"

दूसरे ने उस नारी के मुख पर कुछ टेढ़ी रेखाओं के अंक देखकर बड़ी विनम्रता से पूछा—"आपकी आज्ञा क्या है ?" उसने आँखें नीची कर लीं।

निराशा-भरी वाणी में उसने कहा—"मेरी क्या आज्ञा है अब ? अब तो मैं तुम्हारी आज्ञा की तावेदार हूँ।"

दोनों सिपाहियों ने मन की गहराई में कुछ सोचा। फिर एक-दूसरे की आँखों में आँखें डालकर अपने संकेतों का विनिमय किया।

"आप मार्ग भूल गई हैं क्या ?" उसकी भी उस नारी के विवसन वेश पर से दृष्टि हट गई थी।

"नहीं, ऐसा नहीं है। सभी रास्ते मेरे मन से होकर आते-जाते हैं।"

"कहाँ से आ रही हैं आप ?"

यह सुनना था कि वह बिगड़ उठी। कमर से कटार निकालकर उसकी तरफ बढ़ती हुई बोली—"तू पूछनेवाला कौन है मुझसे ? कही से क्यों न आ रही हूँ मैं, तुझसे क्या मतलब ? आ मेरे सामने आ। मैं भी प्यासी हूँ और मेरी यह लोहे की जीभ भी।"

वह उसके पीछे दौड़ी, वह उससे तेज भाग गया, वह उसका पीछा नहीं कर सकी। दूसरे सिपाही ने पैर पकड़कर उससे क्षमा माँग ली।

"नहीं, तेरे माफी माँगने से कुछ न होता। उसे भी पकड़कर ला, तभी माफी मिलेगी—और भी कुछ मिल सकता है। जा बुला ला उसे।" उसने अपनी कमर में लटकती हुई थैली वजाई—"यह देख अशर्फियां !"

दूसरा सिपाही पहले को, अशर्फियों की गंध देकर खींच लाया। उसने भी आकर उससे माफी माँग ली।

अशर्फियों के लालच में आकर अब वे दोनों हाथ जोड़कर बोले—"हम आपके दास हैं। हमें सेवा बताइए।"

"सेवा तभी बताऊँगी, जब तुम दोनों आँख उठाकर मेरी ओर देखो।"

उन्हें साहस नहीं हुआ उसके वस्त्रविहीन अंग को देखने का। वे दोनों चुपचाप और भी नीची दृष्टि गड़ाए खड़े रहे। उसने फिर अपनी कमर से लटकती हुई थैली बजाई—"पहले तुम्हें मालूम होना चाहिए, मैं कौन हूँ।"

दोनों ने एक ओर जाकर आपस में परामर्श किया। वह फिर चिल्लाई—"कौन हूँ मैं ?"

"हाँ, वही हैं आप। सुलताना शाह तुर्कान।"

"यह तो तुमने ठीक ही बताया। एक बात और ठीक बता सको तो····" उसने फिर अपनी कमर से लटकती हुई थैली बजाई।

"कोशिश क्यों नही करेंगे ?"

"बताओ फिर, रज़िया कहाँ है ?"

"जब सूबेदार का हाथी युद्ध के मैदान से बिदककर भाग खड़ा हुआ तो रज़िया का हाथी भी उसके पीछे हो लिया था।"

"लड़ाई के मैदान में ही गिद्ध और सियारों ने उसका अन्त कर दिया होगा। अब आपकी प्रतिहिंसा भगवान् ने ही पूरी कर दी।"

दूसरा बोला—"अब इस सुसमाचार के लिए····"

"नहीं, वह अभी नहीं मरी है। उसकी मृत्यु का लेख मेरे हाथ में है।" उसने कटार हवा में चमकाई।

वे दोनों उसकी कमर से बँधी हुई अशर्फियों की थैली पर ही टकटकी लगाए देख रहे थे।

"नहीं, वह बड़ी चालाक नारी है। चालीसों तुर्क सरदारों से कहाँ तक किस-किस से समझौता करती वह ? एक से समझौता कर लेना कितना आसान है ? इसी से वह एक निकला अलातूनिया, और वह उसका हाथ पकड़कर दिल्ली के सिंहासन की ओर दौड़ पड़ी ! पर भगवान् कुछ दूसरी तरह से सोचता है। वह जीवित है, वह जीवित है। उसे सिर्फ मेरे ही हाथ से मरना है। तुम

में से क्या कोई उसे ढूँढ़ नहीं सकता--इस थैली के लिए ?" वह कटार लेकर नाचने लगी।

"आप कहें तो हम दोनों उसकी बची हुई हड्डी-पसलियाँ घसीटकर ले आएँ आपके पास ?"

उसने फिर एक हाथ से अपनी कमर की थैली बजाई और दूसरे हाथ से हवा में कटार चमकाई। फिर अपना हाथ नाक पर रख सूँघती हुई बोली—"सूँ··ऽ···सूँ ऽ मेरी नाक बड़ी तेज़ है। रज़िया की माँ हमीदा बेग़म ने एक बार मुझे गाली देकर 'कुतिया' कहा था। हाँ, मैं वही कुतिया इस जंगल में दूर-दूर तक सूँघ लेती हूँ। रज़िया इसी जंगल में कहीं छिपी है।"

दोनों सिपाहियों के मुख पर अविश्वास की छाया पाकर वह बिगड़ उठी—"तुम झूठ कहते हो, वह लड़ाई में मारी गई। मैं कहती हूँ, इसी जंगल में कहीं छिपी बैठी है। मैं कहती हुँ, तुम दोनों कुछ साहस कर, कुछ श्रम कर। अभी उसका पता लगा सकते हो।"

दोनों ही चुपचाप आँखों-ही-आँखों में परामर्श करने लगे।

"अरे मूर्खों, देखते क्या हो ? यह सोने और जवाहरात की झंकार है। बंदिनी होने पर इतना ही मेरे अंग पर बचा रह गया था, नहीं तो मैं तुम दोनों को सोने में तोल न देती क्या ? ले आओ उसे ढूँढ़कर, फिर यह थैली तुम्हारी ही है। बोलो, हो तैयार ?"

"हैं तैयार, हम जाते हैं।" वे दोनों जाने लगे।

"नहीं, ऐसे नहीं जाने पाओगे। बड़े चालाक जान पड़ते हो तुम। मैं यहाँ तुम्हारी राह देखती रह जाऊँ और तुम खिसक जाओ उधर ही से?"

"नहीं सुलताना, ऐसा क्यों करेंगे ? हमें भगवान् की शपथ है।"

"नहीं, जमानत के तौर पर अपनी कोई चीज़ जमा कर जाओ मेरे पास।"

"हथियारों को छोड़ और है ही क्या हमारे पास ?" एक ने कहा।

दूसरा बोला—"पर हथियार सिपाहियों की आन है। उसे यहाँ कैसे छोड़कर जा सकते हैं ?"

"अरे निर्लज्जो, सिपाही की आन की दुहाई देनेवालो, युद्धक्षेत्र से डरकर भाग आनेवालो, क्या यही तुम्हारी आन है ? नहीं, जमानत के तौर पर कुछ यहाँ रखकर ही जाना होगा तुम्हें।"

"हमारे पास हैं ही क्या ? हमारे कपडों की तलाशी ली जा सकती है।"

"ठीक है, दोनों अपने-अपने तमाम कपड़े उतार कर रख जाओ यहाँ।"

दोनो के मुख पर एक अजीब भावना फैल गई। वह मन में सोचने लगे—"यह नारी होकर कैसी बेहूदा बात कर रही है। स्वयं तो कमर से ऊपर इसके कोई कपड़ा नहीं, हमारे भी सारे कपड़े उतरवा रही है। औरत होकर भी इसे ज़रा लज्जा नहीं।"

"क्यों, किस सोच में पड़ गए ? क्या मुझे तुम्हारे कपड़ों का लालच है ? नहीं, कपडों को छोड़कर जब तुम यहाँ से नंगे होकर जाओगे, तुम्हारे मन में मेरे काम को जल्दी-से-जल्दी कर लेने की एक लगन पैदा हो जायगी, तब उसे नहीं ढूँढ़ना पड़ेगा तुम्हें, वही स्वयं अपनी जगह पर खींच लेगी तुम्हें। हो जाओ तैयार !" उसने सोने की थैली फिर बजाई।

दोनों किंकर्त्तव्यविमूढ़ड़े हो ख रह गए वहीं !

"शर्म लग रही है, क्यों ? नंगे होकर ही तो आए हो संसार में। शीघ्रता करो, मैं अधिक नहीं ठहर सकती।"

दोनों सिपाहियों ने लालच के वश में होकर सिर पर की पगड़ियाँ और अंग पर के कपडे खोलकर उसके सामने रख दिए। सिर्फ एक-एक लंगोट उनके बदन पर शेष रहा। शाह तुर्कान ने उसे रहने दिया।

"जाओ, भगवान् तुम्हारी रक्षा करें।" उसने हाथ उठाकर उन दोनो को बिदा देते हुए कहा—"मैं यहीं बैठी तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। मुझसे अधिक प्यासी मेरी कटार है। उसके बाद कहीं पानी मिले तो उसका भी ध्यान रखना।"

दोनों सिपाही अपने कपड़े उस निर्लज्ज स्त्री के पास गिरवी रखकर रज़िया की खोज में चले । कुछ ही दूर चलने पर दोनों में मतभेद हो गया ।

"चलो, सीधे जान बचाकर चल ही दें, माँगते-खाते अपने घर को। जो भी मिलेगा, कह देंगे हमें डाकुओं ने लूट लिया ।"

दूसरे के मन में जेवरों की खनक घर कर गई थी । वह बोला—"बड़ा डरपोक है तू ! ज़रा परिश्रम करें तो सही । रज़िया ज़रूर यहीं कहीं छिपी बैठी होगी ।"

"हाँ,बैठी होगी तुझे इनाम दिलाने के लिए अपने प्राणों के परिवर्तन में ! शाह तुर्कान-जैसी भयानक नारी के घातक हाथों में रज़िया-समान नारी को सौंप देना, यह अच्छा काम नहीं है । मैं इसमें तेरा साथ न दूंगा ।

"तो क्या ऐसे ही नंग-धड़ंग चले जायँ ?"

"अंतरात्मा को नंगा कर देने से शरीर का नंगापन क्या बुरा है ?"

"अच्छा, चलो अपने ही घर को । अगर रज़िया राह में मिल गई तो समझ लेंगे, सौभाग्य हमारा साथ दे रहा है ।"

दोनो इस बात पर राज़ी हो चल दिये ।



२६

अलातूनिया ने देखा, रज़िया श्रम से इतना नहीं थकी थी, जितना पानी की प्यास से बेचैन थी । अलातूनिया ने हाथ पक़ड़कर उसे एक जगह बैठा देना चाहा—"रज़िया, मेरी समझ में तुम इस सेमल के पेड़ के नीचे बैठ जाओ ! मुझे उस तरफ पानी के होने का विश्वास है । आगे भगवान् की इच्छा !" वह पानी की खोज में जाने लगा ।

रज़िया बैठी नहीं, बोली—"मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूंगी ।

अलातूनिया ने रज़िया का लौह कवच उसका भार समझ अपने कंधे पर

डाल लिया था। वह बोला—"लाओ, कमर पट से खोलकर यह तलवार और कँधे पर की ढाल भी मुझे दे दो। तुम्हारे चलने में सुभीता हो जायगा।"

रज़िया ने उत्तर दिया—"हथियार क्या सैनिक का भार है? वह उसकी कठिन आवश्यकता है। भयावह मार्ग से होकर हम जा रहे हैं। पग-पग पर यह संदेह बना रहता है, कब किस शत्रु का सामना करना पड़ जाय। मानव के सिवा जंगली जानवर भी हमारे संकट हैं।"

अलातूनिया ने उसके उत्साह की प्रशंसा की। पर रज़िया का साहस जवाब देने लगा, वह विवश होकर बैठ गई, फिर चेतना खोकर भूमि पर लेट गई। अब क्या करे अलातूनिया? उसने अपनी बुद्धि स्थिर रक्खी और साहस के साथ जल की खोज में चला गया।

"कहीं पर से एक-दो चुल्लू पानी भी ला सकता तो रज़िया की रक्षा हो जाती। युद्ध-भूमि से बचाकर ले आया। यदि पानी के बिना वह मर गई तो मेरे लिए बड़े पश्चाताप की बात हो जायगी।"

जिधर भी वह कुछ हरियाली देखता, उधर ही जल की संभावना कर दौड़ जाता। इस दौड़-भाग में उसके दिशा-ज्ञान खो गया, पानी भी दुर्लभ रहा।

अचानक एक ओर उसे कुछ मकान दिखाई दिए। उधर गाँव समझकर वह गिरते-पड़ते दौड़ पड़ा। निकट जाने पर वहाँ केवल खंडहरों का समूह दिखाई पड़ा। कभी वहाँ गाँव रहा होगा, जो किसी कारण से उजड़ गया।

गाँव के पास अवश्य ही कहीं जलाशय भी होगा, उसके इस विचार की पुष्टि एक पुराने टूटे हुए कुएँ ने की। अलातूनिया ने अपने पीठ पर की ढाल खोली, कमरबंद को फाड़कर उसमें गाँठें लगाकर उसकी रस्सी बनाई। ढाल बाँधकर उसने पानीं खींचा उसमें। पानी ज्यादा दूर तो नहीं था, पर था गँदला, सड़ा हुआ, दुर्गंधयुक्त। वह उसे पी लेने का लोभ संवरण नहीं कर सका। पानी को पाकर उसके प्यास की तीव्रता भयानक हो उठी। उसके रंग और गंध की कोई चिंता न कर वह उसे पी गया।

उसने फिर कुएँ में ढाल लटकाई और उसमें भरकर ले चलने लगा। फ्र वह दिशा का ज्ञान खो चुका था, जाय किधर ? उसने भगवान् का स्मरण किया और जिधर ही उसके पैर ले गए, वह चल पड़ा।

वे दोनों सिपाही भी उसी जंगल के आस-पास अग्रसर हो रहे थे। पहले के मन में किसी तरह अपने बाल-बच्चों के निकट युद्ध-भूमि से जीवित ही पहुँच जाने की प्रसन्नता थी, पर दूसरे को चारों ओर रज़िया-ही-रज़िया दिखाई दे रही थी।

अचानक वे दोनों उसी जगह पहुँच गए, सेमल के पेड़ के नीचे, जहाँ अलातूनिया रज़िया को चेतना-विहीन छोड़कर पानी की टोह में चला गया था।

दूसरे सिपाही की नज़र उधर खिंच गई—"वह देखो, वह कौन सो रहा है....रज़िया ?"

"नही !"

दूसरा उसका हाथ पकड़ उसके निकट ले गया। दोनों ने उसे पहचान लिया। "अब तो भगवान् ने आप-से-आप उसे दे दिया।"

पहला कहने लगा—"नहीं, बेचारी लाचार होकर सो रही है। कोई भी उसका सहायक नहीं। ऐसी दशा में उसे उसके पुराने शत्रु के हाथों में सौंप देना, बहुत बड़ा कुचक्र है। भगवान् हमें क्षमा करें !" उसने दोनों कान पकड़कर आकाश को हाथ जोड़े।

"अरे मूर्ख, तू घर आई संपत्ति को लात मारता है ?"

"दूसरे की विपत्ति क्या हमारी संपत्ति है ? कदापि नहीं।"

"अच्छा, जा तू अपना रास्ता देख।"

"तू भी चल।"

"नहीं, मैं इस अकेली असहाय नारी की सहायता क्यों न करूँ ?"

"तू जैसी सहायता करेगा मैं जानता हूँ।"

पहला सिपाही चला गया। दूसरा वहाँ कुछ देर तक छिपा-छिपा बैठा रहा, कुछ देर प्रतीक्षा करने पर उसने समझ लिया किया कि वहाँ उसका सहायक

कोई भी नही, वह अकेली ही है। वह धीरे-धीरे उसके पास तक बढ़ गया।

पहले उसने समझा, वह सो रही है। उसने उसके निकट जाकर शोर किया—खाँसा-खखारा। इस पर जब वह नहीं जागी, तो उसने उसका पैर पकड़कर उसे झकझोरा। अब उसे उसके अचेत होने में कोई संदेह नहीं रहा।

वह शाह तुर्कान को उसकी सूचना देने को जाने लगा तो उसे उसके अस्त्रों के भीतर चमकता रत्नहार दिखाई दिया और उँगलियों में हीरे की अँगूठियाँ। उसकी लार टपकने लगी। सोचा—"शाह तुर्कान की बंद थैली का कोई भरोसा नहीं। जो फल सामने प्रत्यक्ष है, वही क्यों न तोड़ लिया जाय।"

इसके बाद उनने आगा-पीछा कुछ भी नहीं सोचा। उसने आँखें मींच लीं और रज़िया की कमर से कटार निकालकर उसके पेट में भोंक दी। रज़िया ने तुरंत ही प्राण त्याग दिए!

अलातूनिया सावधानी से ढाल में पानी लिये एक-एक बूंद की रक्षा कर रज़िया की शोध में चला जा रहा था। पर पानी पी लेने के बाद ही से उसकी चेतना क्षीण हो चली थी। उसके पैर ढीले पड़ गए, और आँखों की दृष्टि भी धुंधली। पर पानी के मिल जाने की प्रसन्नता से वह आगे-ही-आगे बढ़ता गया। पथ-भ्रष्ट हो जाने के कारण वह रज़िया तक तो नहीं पहुँच सका, पहुँच गया वहाँ, जहाँ शाह तुर्कान उन दोनों सिपाहियों की प्रतीक्षा में थी।

दूर से उसने उसी को रज़िया समझ लिया। पर निकट पहुँचने पर जब उसकी चेतना जवाब देने लगी और उसने रज़िया के बदले वहाँ किसी दूसरे को पाया तो उसे बड़ा मानसिक धक्का पहुँचा, वह लौट गया।

उसने शाह तुर्कान को नहीं पहचाना, पर वह पहचान गई। उसके भी बड़ी प्यास थी। उसने वह पानी भरी ढाल उसके हाथों से छीन ली। अलातूनिया के हाथों से जब वह ढाल छिन गई तो वह भूमि पर गिरते-गिरते बोला—"थोड़ा पानी उस बेचारी को भी पिला देना, सेमल के पेड़ के नीचे वह बैठी है।" कहते-कहते उसने प्राण त्याग दिए।

शाह तुर्कान ने उस ढाल का सारा पानी पी लिया, फिर उस शव को संबोधित कर बोली—"अब अच्छी तरह तुझे पहचान लिया, तू अलातूनिया ही

है—रज़िया के प्रेम का प्यासा ! तेरी प्यास अधूरी ही रह गई। मेरी प्यास बुझाने को तू यह पानी दे गया और मेरी कटार की तृष्णा की तृप्ति के लिएउसका पता। अवश्य ही वह रज़िया है, सेमल के पेड़ के नीचे ···कहाँ है वह पेड़ !"

'अब उन सिपाहियों की राह देखने की क्या ज़रूरत ? अब मैं स्वयं ही उसे ढूँढ़ लूँगी। सेमल का पेड़ !"

वह कभी इधर, कभी उधर दौड़ने लगी—"सेमल का पेड़····!" चिल्लाती हुई चली वह। आकाश की नीलिमा में शाखाएँ छितराए हुए सेमल का पेड़ दिखाई दे गया उसे। उसने उसके निकट तक पहुँचने का मार्ग भी ढूँढ़ लिया। उसकी जड़ पर किसी को पड़ा देख लिया उसने दूर से।

"सेमल का पेड़ !····उसके नीचे सोया हुआ है कोई। क्या वही रज़िया है ?"

तेज़ी से निकट जाकर उसने देखा—"रज़िया! ····रज़िया! ···हाँ, रज़िया ही है यह ! लेकिन इसके कपड़ों पर रक्त ! क्या कोई और आकर मेरी प्यास से पहले अपनी प्यास बुझा गया ?"

उसने रज़िया के अंग पर का घाव देखा, हाथ की उँगलियों से उसकी नाड़ी टटोली। वह सिर पीटकर रोने लगी—"हे भगवान् ! यह तो चल बसी, पर मेरे हाथों से क्यों नहीं मरी····? अब मैं क्या करूँ ? इतने वर्षों से रखा हुआ यह छुरा, अब वह मेरे किस काम का है ? अब मैं किसके लिए जिऊँ ? इस निराशा से ही क्या मेरा सिर चकराने लगा। या वह मुझे सड़ा हुआ ज़हरीला पानी पिला गया ? हाँ, तभी उसने मुझे रज़िया का पता बताया।" वह विक्षिप्त होकर आगे बढ़ती गई।

कुछ दूरी पर अचेत होकर गिर पड़ती है। राजमद ! तुझे धिक्कार है। प्रतिहिंसा ! क्या तेरा यही परिणाम है ? मारा जानेवाला ही नहीं, मारनेवाले की भी यही परिणति है !

बंदिनी के भाग जाने के बाद पहरेदार मसऊद फाँसी पर चढ़ा दिए जाने के भय से कुछ दिन बड़ा बेचैन रहा। जब रज़िया ने अलातूनिया का विद्रोह दवा देने के लिए रण-यात्रा की और दिल्ली में भी स्थिति गड़बड़ हो गई, तो फिर उसका लेखा-जोखा करनेवाला कोई नहीं था। सबका ध्यान इधर-उधर हो गया। वह गाँव को चला गया।

अपना कोई गाँव उसका था नहीं। हरियाणा प्रांत में माँगते-खाते घूमने लगा वह—विरक्त साधू के वेश में। एक दिन उसने एक गाँव के निकट अजीब तरह के कपड़े पहने एक व्यक्ति को आते देखा।

शाम का धुंधलका, उसकी चाल में बड़ी झिझक, कपड़े बड़े विचित्र। जान पड़ता था, ज़री के काम के साफे की धोती पहनी हुई थी। वैसी ही एक चादर ओढ़ रखी थी। कमर में एक तलवार बँधी थी और पीठ पर एक ढाल। सिपाही का ऐसा अद्‌भुत वेश तो कभी देखा ही नहीं था उसने। उसके हाथ में एक पोटली थी, जिसमें कुछ बँधा था, जिसे वह बड़ी सावधानी से छुपाकर ले जा रहा था।

अचानक मसऊद ने कुछ समझकर उसका कपड़ा खींच लिया, फिर इस भय से कि वह कहीं कपड़ा छोड़कर भाग न जाय, उसने उसका हाथ पकड़कर पूछा—"क्यों रे, कहाँ से आ रहा है?"

उसने हाथ छुड़ाने की कोशिश नहीं की, वरन् बड़े प्यार से बोला—"मसऊद भाई, नहीं पहचाना मुझे? मैं हूँ तौफीक!"

"पर ऐसी दशा और ऐसे कपड़ों में मैं तुझे पहचानने से इनकार करता हूँ।"

"सचमुच में मेरे कपड़े ऐसे ही हैं, इनसे तुझे संशय में पड़ जाता स्वा-

भाविक ही है। चल, मेरे घर चल, यहाँ से निकट ही है। सारी कथा सुना दूँगा तुझे। तू यहाँ कैसे आ गया? क्या दिल्ली छोड़ दी?"

"पर हाथ नहीं छोड़ूँगा। मुँह खुला है तेरा अपनी कथा सुनाने के लिए। बिना उसे सुने मैं तेरे घर नहीं जाऊँगा। बता, यह कपड़ा किसका है? समझ ले, मैंने इसे पहचान लिया है, और तू मुझे बहका नहीं सकता।"

तौफीक ने इस बीच कहानी सोच ली—"तुझे इतना तो मालूम ही होगा, दिल्ली में समय पर वेतन न मिलने की कठिनाई से मैं भटिंडा के सूबेदार की सेना में भरती हो गया था। युद्ध में हारकर जब मैं घर लौट रहा था, तो कुछ डाकुओं ने मुझे घेर लिया। मेरे पास जब उन्हें कुछ न मिला, तो असगुन मिटाने के लिए उन्होंने मेरे तमाम कपड़े उतार, मुझे नंगा-धड़ंगा छोड़ दिया।"

"ये कपड़े जो तू पहने है, ये कहाँ से आए?"

"लुकते-छुपते जब मैं जंगलों की राह से आ रहा था, तो एक भलेमानुष ने लाज रखने को ये कपड़े दे दिए।" उसने उन आभूषणों की थैली को बड़े यत्न से बगल में छिपा लिया था।

मसऊद की शंकित दृष्टि सबसे पहले उसी पर पड़ी—"इस थैली में क्या है?"

तौफीक हँसकर बोला—"यह थैली? मसऊद, चल मेरे घर चल। मैं तुझसे कुछ भी नहीं छिपाऊँगा। और दोस्त, अगर तू मेरे इस भेद को सबसे छुपा लेने की क़सम खाने को तैयार है, तो इसमें मुझे तेरा हिस्सा कर देने में कुछ भी आपत्ति न होगी।"

तौफीक उसे खींचकर ले जाने लगा—"नहीं, यहीं दिखानी पड़ेगी।" उसने उसके हाथ से पोटली छीन ली।

तौफीक ने फिर पोटली पर अधिकार कर लिया। "लड़ाई के मैदान में पड़ी मिली थी यह मुझे।"

"सरासर झूठ। अभी तूने कहा, डाकुओं ने लूट लिया। यह पोटली तब तूने कहाँ छुपा ली थी ?"

"डाकुओं के आने से पहले मैंने इसे छुपा लिया था।"

"एक झूठ दबाने के लिए फिर दूसरा झूठ!" मसऊद ने पोटली छीनकर खोली। उसमें से एक हार को उसने तुरन्त ही पहचानकर कहा—"यह हार तो रज़िया सुलताना का है।"

"हो सकता है।"

"नहीं, है···ऽ···ऽ···! सच-सच बता सुलताना कहाँ है ?"

"मैं नहीं जानता।"

"तुझे जरूर मालूम है। मैं किसी पर यह प्रकट नहीं करूँगी। मुझे तेरे आभूपणों का भी कोई लालच नहीं। रात में उसके शव को जानवर घसीटेंगे! मैंने उसका नमक खाया है, मुझे भगवान् का भय है।"

मसऊद तभी, तौफीक को ले गया उसी जंगल में। रात सघन होकर भयानक हो गई थी। गिरते-पड़ते, भूलते-भटकते अंत में वे दोनों पहुँच ही गए उस सेमल के पेड़ के नीचे।

मसऊद ने देखा, अनेक प्रयत्नों से प्रतिपालित, दासवंश के सबसे प्रतापी सम्राट् की लाड़ली कन्या, कठोर भूमिपर अपने ही रक्त की नदी में डूबी असहाय पड़ी थी।

मसऊद ने कहा—"तौफीक, कर्मों का फल मिलेगा, ज़रूर मिलेगा। तूने अपना पाप स्वीकार किया है। जब तूने इसकी हत्या की, तो क्या यह अकेली ही थी ?"

"मैंने हत्या नहीं की। यह मरी पड़ीं थी। मैंने इसके आभूषण उतार लिए। कोई भी उतार लेता।"

"अच्छा, सच न बताएगा ? सच बताकर भी पाप कट जाते हैं। यह अपनी मृत्यु से नहीं मरी है। देख, इस कटार से मारी गई है। संभवतः यह इसी की कटार है। तू सच न बोलेगा ?"

तौफीक सोच-विचार में पड़ा रह गया।

"अच्छा, समय खोना नहीं है।" दोनों ने मिलकर कटारों की मदद से एक गड्ढा खोदा, उसमें रज़िया को अंतिम निद्रा में सुला दिया गया।

तौफीक का पश्चात्ताप जाग उठा। उसने वह आभूषणों की थैली मसऊद के चरणों में रख दी। मसऊद ने उसे लात मारकर दूर फेंक दिया—"तौफीक, भगवान् से माफी माँग अपने पाप की!"

तौफीक ने हाथ जोड़कर आकाश की ओर दृष्टि की। मसऊद को उसकी आँखों में हत्यारा दिखाई दिया। उसने कटार उठाकर उस पर आक्रमण कर दिया— 'कमीने, हत्यारे!····तेरे पाप की माफ़ी नहीं····यही दंड है!"

मसऊद ने उसके अंग-प्रत्यंग में कटार से कई घाव कर दिए। वह मृतक वहीं गिर पड़ा! तभी अपने पंख फटफटाता हुआ एक बीभत्स गिद्ध आकर उस पर बैठ गया। फिर एक और भी उधर आता हुआ दिखाई दिया। वे कहाँ से आए? मसऊद की दृष्टि कुछ आगे खिंच गई—वहाँ तो और भी अनेक बैठे थे। उसने आगे बढ़कर देखा, शाह तुर्कान की आँखों को दो गिद्ध नोच रहे थे। मसऊद ने चिल्लाकर दोनों कान पकड़े और आकाश को हाथ जोड़ पापों के लिए क्षमा माँगी।

× × ×

कहाँ कुतुबमीनार के पास पिता की क़ब्र! वहाँ से दूर····दूर····बहुत दूर! पुरानी दिल्ली में सीताराम बाज़ार का जहाँ पर अंत होता हैं, वहीं बुलबुलीख़ाना उस स्थान का नाम है। वहाँ एक क़ब्र अनाम-अरकान। तब उस पर कोई समाधि-लेख भी न था। वही रज़िया की क़ब्र बताई जाती है।



उपन्यास के मुख्य पात्र

१.	इल्तुतमिश	....	दिल्ली का सुलतान
२.	शाह तुर्कान	....	उसकी रखेल
३.	हमीदा	....	उसकी रानी
४.	रज़िया	....	उसकी राजकुमारी
५.	रुक्नुद्दीन	....	शाह तुर्कान का बेटा
६.	याकूत	....	रज़िया का हब्शी अंगरक्षक
७.	अलातूनिया	....	भटिंडा का सूबेदार
८.	अमीना	....	शाह तुर्कान की दासी
९.	मसऊद	....	शाह तुर्कान का प्रहरी
१०.	कुतुबुद्दीन	....	रज़िया का भाई
११.	रमजानी	....	एक राजगीर
१२.	सौसन	....	रमजानी की पत्नी
१३.	बशीरुद्दीन	....	सेनापति
१४.	करीमशाह	....	चालीस तुर्की सरदारों का प्रधान
१५.	सकीना	....	रुक्नुद्दीन की दासी
१६.	खज़ांची	....	
१७.	बानो	....	खज़ांची की पत्नी
१७.	सलीमन	....	दाई

पंतजी की अन्य प्रमुख रचनाएँ

प्रभात के परिरूप	(उपन्यास)	२०-००
एक सूत्र	,,	५-००
तारिका	,,	५-००
मदारा	,,	८-००
जूनिया	,,	६-००
प्रतिमा	,,	६-००
अनुरागिनी	,,	१५-००
नरजहाँ	,,	८-००
रूपगंधा	,,	८-००
गुरु दक्षिणा	(नाटक)	३-००
अँगूर की बेटी	,,	३-००
राजमुकुट	,,	३-००
सुहागबिंदी	,,	४-००
अँधेरी बस्तियाँ	,,	४-००

